



जनवादी हिन्दी साहित्य में 'कथन' पत्रिका का योगदान

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़
की
स्नातकोत्तर (उत्तराद्ध) द्वितीय की परीक्षा में चतुर्थ प्रश्नपत्र के
विवरण में प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबन्ध

निर्देशक :

प्रो० कंवरपाल सिंह
हिन्दी विभाग

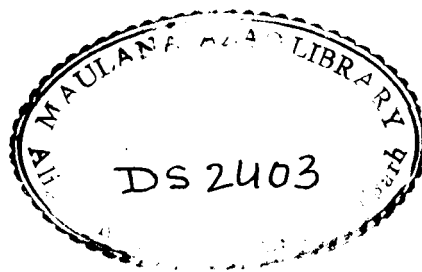
प्रस्तुतकर्ता :

चिलारा जहाँ
अनुक्रमिक - 1316

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़

1991-92



DS2403

विषय सूची
=====

भूमिका	पृ०सं०
1. <u>प्रथम अध्याय</u>	1 -14
हिन्दी साहित्य में जनवाद की अवधारणा	
2. <u>द्वितीय अध्याय</u>	15-24
हिन्दी पत्रकारिता : उद्भव और विकास	
3. <u>तृतीय अध्याय</u>	25-42
लघु पत्रिका आन्दोलन का उद्भव और विकास	
4. <u>चतुर्थ अध्याय</u>	43-98
१क१ कहानी	
१ख१ कविता	
१ग१ परिचर्चा	
१घ१ बहस	
१च१ अन्य स्तम्भ	
5. <u>पंचम अध्याय</u>	99-102
रमेश उपाध्याय व्यक्तित्व और कृतित्व	
6. <u>षष्ठम् अध्याय</u>	103-129
कथन में प्रकाशित विविध विधाओं की रचनानुक्रमणिका	
<u>उपसंहार</u>	130-32
<u>परिशिष्ट</u>	133-37

भूमिका

हिन्दी साहित्य के लिए जनवाद शब्द अत्यन्त नया है जबकि इसका रूप पुराना है। जनवादी साहित्य जनता के जीवन की आशाओं आकांक्षाओं तथा उनके संघर्षों को वाणी देता है।

सन् 1977 में जनवादी विचार मंच की स्थापना दिल्ली विश्व-विद्यालय दिल्ली में हुयी। इस जनवादी विचार मंच को हम जनवादी विचार मंच की भूमिका कह सकते हैं जिसका प्रारम्भ जनवादी लेखक संघ की स्थापना के साथ सन् 1982 में दिल्ली में हुआ। जनवादी लेखक संघ के प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन के बाद जनवादी पत्रिकाओं कल्प, उत्तरगाथा, उत्तरार्द्र, कंक की व्यापक चर्चा प्रारम्भ हुयी। "कथन" का हिन्दी जनवादी साहित्य में क्या योगदान रहा, यह प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध का विषय है।

"कथन" रमेश उपाध्याय तथा रामकुमार वर्मा द्वारा सम्पादित दिल्ली से प्रकाशित एक जनवादी पत्रिका है। इसके सम्पादक चूंकि स्वयं कहानीकार हैं इसलिए उन्होंने मुख्य रूप से कहानियों को महत्त्व दिया है पर इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें अन्य विधाओं का प्रकाशन नहीं हुआ।

जनवादी साहित्य का उद्देश्य है अपने आस-पास की दुनिया से सच्चा रिश्ता कायम करना और जन सामान्य को साहित्य का विषय बनाकर उसको जनसामान्य की भाषा में अभिव्यक्त करना।

"कथन" में प्रकाशित रचनाओं ने जनवादी साहित्य में किस तरह का योगदान दिया इन सन्दर्भों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय—"हिन्दी साहित्य में जनवाद की अवधारणा" विषय पर लिखा गया है कि हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल से लेकर आज तक हिन्दी साहित्य में जनवाद किन-किन रूपों में विद्यमान है। द्वितीय अध्याय में

"हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव और विकास" रेखांकित किया गया है ।

तृतीय अध्याय में लघु पत्रिका आन्दोलन का उद्भव और विकास के साथ लघुपत्रिकाओं की एक संक्षिप्त सूची दी गयी है ।

चतुर्थ अध्याय में कथन में प्रकाशित विविध विधाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

पंचम अध्याय में रमेश उपाध्याय का व्यक्तित्व और कृतित्व को विषय बनाया गया है ।

षष्ठम् अध्याय में कथन में प्रकाशित विविध विधाओं की रचना-नुक्रमणिका दी गयी है ।

सप्तम् अध्याय—उपसंहार है जिसमें जनवादी साहित्य में कथन पत्रिका का योगदान विषय को स्मृतः लिया गया है ।

प्रस्तुत विषय "जनवादी हिन्दी साहित्य में "कथन" पत्रिका का योगदान पर लघु शोध कार्य करने की प्रेरणा मुझे प्रो० कुँवर पाल सिंह साहब हिन्दी विभागाध्यक्ष, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ से मिली ।

प्रो० कुँवर पाल सिंह ने "कथन" जैसी उल्लेखनीय जनवादी पत्रिका पर कार्य करने के लिए मुझे प्रेरित किया । इस शोध के लेखन में मार्ग दर्शन कर अपनी सहजता और सरलता के साथ मेरे उत्साह और साहस को बढ़ाया है ।

मैं अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के सभी गुरु जनों के प्रति नमन करती हूँ जिनके आशीर्वाद और सत्परामर्श का परिणाम यह लघु शोध प्रबंध है ।

मैं अपने आदरणीय पिता जी श्री शाह आलम खॉ व ममतामयी माता की दिल से आभारी हूँ जिनके असीम स्नेह व आशीर्वाद से मुझे निरन्तर कार्य करने की प्रेरणा मिली ।

सितारा जहाँ

प्रथम - अध्याय

हिन्दी साहित्य में जनवाद की अवधारणा

हिन्दी साहित्य में जनवादी आन्दोलन प्रगतिशील आन्दोलन का ही विकसित रूप है किन्तु "जनवाद" शब्द उतना नया नहीं है, क्योंकि "जनवाद" का जन्म सामन्तवाद के विरुद्ध संघर्ष करते हुए पूंजीवाद के उदय के साथ हुआ। जबकि हमारे देश में जनवादी व्यवस्था का वर्तमान स्वरूप साम्राज्यवाद विरोध, सामन्तवाद विरोध, स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, उस संग्राम के नेता पूंजीपति वर्ग द्वारा आम जनता के विभिन्न हिस्सों को साथ लेने के लिए उनके संयुक्त मोर्चे बनाने के दौरान विकसित हुआ। स्वतंत्रता के बाद भारत में जो व्यवस्था स्थापित हुयी, उसने पूंजीपति वर्ग को पूर्ण संरक्षण प्रदान किया परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान विकसित जनवाद खंडित हो गया क्योंकि जनवाद की रक्षा सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में सामन्तवाद साम्राज्यवाद और एकाधिकार पूंजीवाद के विरुद्ध समस्त जनता के संयुक्त मोर्चे द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जनवादी साहित्य का आधार किसी राष्ट्र या देश की जनता का मुख्य जीवन प्रवाह होता है और जनता के अन्तर्गत किसी राष्ट्र या देश के निवासियों का मुख्यांश आता है जो समाज के सम्पन्न लोगों के विपरीत अपने श्रम के आधार पर अपनी जीविका का निर्वाह करते हैं। यह श्रम शारीरिक भी होता है और मानसिक भी और यही कारण है कि उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार कर दूसरों के श्रम को खरीदने वालों और उनका शोषण कर धन कमाने वालों के अलावा किसी राष्ट्र या देश के निवासियों का अधिसंख्य हिस्सा जनता का निर्माण करता है। जनवादी साहित्य इसी जनता की जिन्दगी को उनके परिवेश और शोषण को सम्पूर्णता में प्रस्तुत करता है।

जनवादी साहित्य जनता के बीच उनके जीवन की आशाओं-आकांक्षाओं उनके संघर्षों व स्वप्नों को वाणी देता है यही कारण है कि जनवादी साहित्य में हम जनता की संस्कृति उसके कर्म और आचरण को सहज रूप देख सकते हैं । वह एक तरफ तो जनता के जीवन से उसकी कर्मठता तथा संघर्षशीलता से प्रेरणा ग्रहण करता है तो दूसरी ओर जनता को शिक्षित और जागृत करता है । साथ ही जनता के आकांक्षित जीवन को बड़े ही चित्रमय तथा सूक्ष्म रूप से उसके समक्ष प्रस्तुत करते हुए, सर्वहारा वर्ग को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए संगठित रूप संघर्ष के लिए भी प्रेरित करता है ।

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन ने सर्जना तथा चिन्तन के क्षेत्र में नई-नई दिशाओं की ओर उन्मुख करने के साथ यह प्रश्न भी उठाया कि किसी रचना की जीवंतता और सौन्दर्य का श्रोत क्या है । इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जाता है कि सामान्य जन के जीवन और परिवेश एवं उनके वास्तविक जीवन के मुख्य प्रवाह से रस ग्रहण करने वाली रचना ही जीवंत और प्राणवान हो सकती है । इस अवधारणा से यह बात स्पष्ट रूप से उजागर हो जाती है कि रचना के सृजन को जनाधार से तथा जन साधारण की आकांक्षाओं से जोड़ना प्रमुख है । प्रगतिशील आन्दोलन की ये चिन्ताएं तथा उसके अनुरूप विकसित रचनाशीलता इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि प्रगतिशील आन्दोलन भारतीय साहित्य के क्षेत्र में किसी आयातित या आरोपित चेतना का आन्दोलन न होकर अपने देश, समय और समाज की कठोर धरती पर उपजा एक आन्दोलन था । प्रगतिशील आन्दोलन समय की मांग थी । प्रगतिशील रचनाएं इस बात का प्रमाण हैं कि वह अपनी पिछली साहित्य परम्परा से अलग न होकर उसी का क्रमिक विकास है । इस विकास क्रम को हिन्दी साहित्य में आदि काल से देखा जा सकता है ।

हिन्दी साहित्य के आदि काल में ही हमें ऐसी रचनाएं दिखाई देती हैं जो अपने रूप में ही नहीं अपनी अर्न्तवस्तु में पूर्ण रूप से धार्मिक है और

समाज के एक बड़े हिस्से से कटी हुई है। उदाहरण के लिए अपभ्रंश में रचित जैन कवियों की रचनाएं। हिन्दी साहित्य के उद्भव और विकास में तो इन रचनाओं का महत्वपूर्ण योगदान अवश्य है, परन्तु तत्कालीन समाज और उसके परिवेश से इसका निकट का सम्बन्ध नहीं है। इस काल में वीर गाथाओं की भी एक परम्परा रही है, जो मूलतः राजा महाराजाओं की वीरता विलासिता और शौर्य का दरबारी कवियों द्वारा अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है। जिसमें रासो ग्रंथ प्रमुख हैं। इसमें जनता तथा जनता के जीवन की वास्तविक स्थिति का शायद दर्शन सुलभ हो। ये सामंती मानसिकता से जुड़ी हुई रचनाएँ हैं। वास्तव में ये युद्ध किसी बड़े उद्देश्य के लिए नहीं होते थे, अपितु आपसी मान सम्मान के प्रश्न को लेकर लड़े जाते थे। युद्ध के बाद तथा युद्ध के समय जन सामान्य की क्या स्थिति होती थी, इसका उत्तर हमें इस साहित्य में प्राप्त नहीं होता। इसी काव्य में हमें सिद्धों और नाथों की रचनाएँ भी मिलती हैं जिसमें सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक आडम्बरों तथा कर्मकाण्डों आदि की निन्दा की गयी है। आदिकाल के सिद्धों तथा नाथों के साहित्य में ही हमें जनसाधारण विरोधी दृष्टिकोण नहीं दिखाई देता। आगे चलकर हिन्दी साहित्य के निर्गुण साहित्य परम्परा इसी दृष्टिकोण का विकास है। जिसका आधार सिद्धों नाथों की साधना पद्धति और विचारधारा है।

हिन्दी साहित्य में निर्गुण काव्य धारा का एक सामाजिक पक्ष भी है जो जन-साधारण की जिन्दगी से उपजा। संत काव्य की यह जनवादी आधारभूमि भक्ति आन्दोलन के साथ-साथ विकसित हुई, वह भक्ति आन्दोलन जो मध्यकाल में उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम अर्थात् पूरे देश को अपनी परिधि में समेट लिया था। यह भक्ति निर्गुण और सगुण भक्ति की दो प्रमुख धारा में विभक्त होकर देश के दुखी तथा विपन्न जन सामान्य की आशाओं को अभिव्यक्ति देता है। इसीलिए हम इस काल के साहित्य को जन जीवन को अभिव्यक्ति देने तथा जन जीवन के बीच पैदा होने के कारण जनवादी साहित्य का प्रतीक मान सकते हैं।

भक्ति आंदोलन के संत कवियों में हमें पहली बार एक मानवतावादी संस्कृति तथा एक मानवीय एवं उच्चतर मूल्यों की बात सुनायी देता है, जो आज के युग में भी स्वप्न बनी हुयी हैं। इनके काव्य में ही नहीं इनके जीवन में भी हमें श्रम की महत्ता सच्चे और सही कर्म का प्रचार प्रसार दिखाई देता है। कबीर, रैदास, नामदेव आदि संत निःसंकोच भाव से अपनी जाति की घोषणा करते हैं और ऊँच-नीच जाति-धर्म आदि आडम्बरों को तोड़कर समाज के क्रान्तिकारी परिवर्तन का शंखनाद करते हैं। मध्यकाल के साहित्य की यह पंक्ति—“जाति पॉति पूछे न कोई, हरि को भजे तो हरि का होई।” मानवतावादी मानसिकता, सामाजिक व धार्मिक जागरण तथा लोक चेतना का उदाहरण है।

भक्ति आन्दोलन का दूसरा आयाम सगुण भक्ति है। जिसके अन्तर्गत सूर, तुलसी आदि भक्तों की ऐसी रचनाएँ हैं, जो लोक हृदयकी गहरी पहचान से हमारा साक्षात्कार कराती हैं। ये जनसाधारण की भाषा में उनकी ही आकांक्षाओं को वाणी देने वाले कवि हैं। डा० रामविलास शर्मा का तुलसी की महत्ता के विषय में यह कथन दृष्टव्य है कि, “साधारण जन की दरिद्रता पर अकेले तुलसीदास ने जितना लिखा है उतना आधुनिक कवियों ने कुल मिलाकर भी नहीं लिखा। ये तुलसी ही हैं जो मध्यकाल में सबसे पहले और अकेले पेट की आग की सबसे बड़ी और दास्य आग कहकर हमारा ध्यान एक ज्वलंत सच्चाई की ओर खींचते हैं और दशानन को दारिद्र्य का प्रतीक मानते हुये उसकी चपेट से दुनिया की मुक्ति के लिए अपने राम से प्रार्थना करते हैं।”

सूरदास में हमें पहली बार नारी के स्वतंत्र प्रेम के दर्शन होते हैं। उनके काव्य में नारी सामन्ती बन्धनों का तिरस्कार करके पारिवारिक बन्धनों को तोड़ते हुये अपने उत्कट प्रेम का सात्त्विक परिचय देता है। नारी मन की व्यथा, असंतोष तथा विद्रोह को वाणी देने वाली मीरा काव्य की इसी समय की देन है। ये सभी रचनाकार जनसाधारण के जीवन तथा उनकी समस्याओं

से जुड़े हुये थे, यही कारण है कि इनकी रचनाएं आज भी प्रासंगिक हैं ।

भक्ति काल के उपरान्त हिन्दी साहित्येतिहास में रीतिकाल आता है । इस काल की रचनाएं पूर्णतः जनजीवन से कटी हुयी हैं । इस युग के रचनाकार दरबारी थे । इसीलिए वे अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन तथा विलास के लिए अपनी रचनाओं को माध्यम बनाया । इनकी रचनाओं का उद्देश्य पाण्डित्य प्रदर्शन, नारी सौन्दर्य और शृंगार तथा आश्रयदाताओं की चाटुकारिता ही प्रमुख थी । इन कवियों की शृंगारिकता में बाहरी रूप का आकर्षण तथा सौन्दर्य ही प्रधान था । नारी के अन्तरमन की गहराई नहीं थी । वह नारी तथा उसके शरीर को केन्द्र वस्तु बनाकर नायिका भेद का ही वर्णन करते थे । जिसमें जन साधारण को आकांक्षा का कोई सरोकार नहीं था । इस आधार पर कहा जा सकता है कि रीतिकाल काव्य में जनवादी तत्त्व नहीं है ।

रीतिकाल के पश्चात् हिन्दी में आधुनिककाल आता है और इस काल का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से होता है । भारतेन्दु युग हिन्दी नवजागरण का युग है । रीतिकाल में जो साहित्य राज दरबारों की चमक, विलास, मनोरंजन तथा राजाओं विशेषकर आश्रयदाताओं की झूठी प्रशस्तियों में सिमट गया था । वह इस युग में आकर व्यापक जन जीवन तथा जन चेतना से जुड़ा । भारतेन्दु युग के कवि और साहित्यकार उसे दोबारा जनता के बीच लाये । इस प्रकार एक बार फिर हिन्दी साहित्य भक्ति आन्दोलन के बाद जन सामान्य की समस्याओं, भावनाओं व आकांक्षाओं से जुड़ गया । इसी युग के लेखक बालकृष्ण भट्ट एक स्थान पर साहित्य के बारे में लिखते हैं, "साहित्य को जनसमूह के हृदय के विकास के रूप में परिभाषित करना चाहिए ।" यह कहना अतियुक्ति न होगा कि आगे की सम्पूर्ण रचनाएँ साहित्य की यही अवधारणा संचालित तथा अनुशासित करती है ।

भारतेन्दु तथा उनके सहयोगियों में पुरानी मानसिकता के निशान होने के बावजूद भी उनकी रचनाएँ जनवादी साहित्य की विरासत के रूप में

स्वीकार की जाती चाहिए, क्योंकि इस समय के रचनाकार अपनी रचनाओं में निजभाषा तथा निजदेश पर अभिमान, जनजीवन के यथार्थ रूप का चित्रण रूढ़ियों को समाप्त करने के लिए संघर्ष, राष्ट्र तथा जाति के शोषण का विरोध तथा जन की आकांक्षाओं को वाणी प्रदान करने, जनवादी मूल्यों का प्रचार-प्रसार किया। अपने सीमित साधनों के बावजूद भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण, चौधरी "प्रेमधन", राधाचरण गोस्वामी आदि रचनाकारों ने न केवल हिन्दी प्रदेश की जनता के लिए बल्कि सम्पूर्ण भारत की जनता के लिए मार्ग प्रशस्त किया। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगियों की रचनाएं हमें उस युग की सामान्य जन की वास्तविकता तथा उनके जीवन से अवगत कराती है। साथ ही समाज में व्याप्त कानून व्यवस्था आदि पर व्यंग्य भी करते हैं। भारतेन्दु एक स्थान पर लिखते हैं—

चूरन साहब लोग जो खाता, सारा हिन्द हजम कर जाता।

चूरन पुलिस वाले खाते, सब कानून हजम कर जाते।

इस तरह जनजीवन के यथार्थ चित्रण जनवादी साहित्य की आवश्यक शर्त है और भारतेन्दु तथा उस युग के अन्य रचनाकारों ने इस चित्रण को अपनी रचनाओं में महत्त्व प्रदान किया है। अतः भारतेन्दु को आधुनिक हिन्दी साहित्य में जनवादी साहित्य का संस्थापक कहा जा सकता है।

भारतेन्दु के बाद हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी नवजागरण का महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसा सरस्वती पुत्र प्राप्त हुआ जिसके नाम पर अगला साहित्य युग अर्थात् द्विवेदी युग प्रारम्भ हुआ। भारतेन्दु युग के रचनाकारों में जो जन जीवन के यथार्थता तथा देश और राष्ट्र के प्रति जो तड़प दिखाई पड़ती है। द्विवेदी युग में वह और अधिक विकसित हुई। इस युग में राष्ट्रीय आन्दोलन का एक नया सन्दर्भ कविता और साहित्य को बल प्रदान करता है

और ऐसे अनेक रचनाकार हमारे सामने आते हैं जो राष्ट्रीय आन्दोलन तथा जन साधारण के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करते हैं तथा अपनी रचनाओं में राष्ट्र तथा जन साधारण की आशाओं आकांक्षाओं तथा संघर्ष को चित्रित करते हैं ।

भारतेन्दु युग में साहित्य को जो यथार्थवादी जनवादी जमीन प्राप्त हुयी थी, द्विवेदी युग में वह अधिक उर्वरा हुयी तथा प्रेमचन्द, प्रसाद, शुक्ल, नाथुराम शर्मा शंकर, सनेही रचनाकारों की ऐसी पीढ़ी सामने आती है जो परम्परागत साहित्य के साथ यथार्थवादी-जनवादी साहित्य को भी हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं । इन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन को जनसामान्य की समस्याओं से जोड़ा तथा जनता को मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर किया । इन रचनाकारों का नेताओं से अधिक जन साधारण के जीवन की पहचान थी । यही कारण है कि रचनाकार न केवल देश तथा देश की जनता की वास्तविक स्थिति से नेताओं को अवगत करा रहे थे अपितु उनके विचारों को उस सन्दर्भ की तरफ आकृष्ट करते हैं, जिससे देश तथा जनता की मुक्ति सार्थक बन सके ।

द्विवेदी युग में ऐसे रचनाकार थे जो रूस को समाजवादी क्रान्ति के साथ ही उसे प्रेरित करने वाली मूल शक्ति को भी पहचान लेते हैं तथा बड़े ही स्पष्ट रूप में अपनी रचनाओं में उसे प्रस्तुत भी करते हैं । स्वतंत्रता आन्दोलन में जन-जन को प्रेरणा देने वाला "झण्डा ऊँचा रहे हमारा" गीत भी इसी समय लिखा गया । सनेही जी ने अपने समाज में व्याप्त वर्ग विषमता को उभारते हैं तथा शोषित जनता का समर्थन करते हैं । साम्यवाद की बात करने वालों में सनेही जी का पहला नाम आता है जिसे आगे चलकर एक कविता के रूप में प्रस्तुत किया गया---

श्रम किसका है मगर मौज है कौन उड़ाते,
 x x x x
 किसका बहता रुधिर पेट है कौन बढ़ाते,
 x x x x
 क्या से क्या ये देखिये रंग हुआ संसार का,
 युग विकास का, हास का, सिरजन या संहार का ।

ये रचनाएं मात्र साम्राज्यवाद पर ही प्रहार नहीं करती अपितु साम्राज्यवाद के देशी सहायकों, पूँजीपतियों तथा सामन्तों पर भी बराबर की चोट करती हैं ।

प्रथम मध्ययुद्ध के समय हमारे अधिकांश लेखकों तथा रचनाकारों को साम्राज्यवाद से संबंधित कोई भ्रम नहीं रहा और उन्होंने यह भी जान लिया कि भारतीय सामन्तवाद, साम्राज्यवाद का सहयोगी है । जनवादी हिन्दी साहित्यकारों में प्रेमचन्द का नाम सम्मान से लिया जाता है । उन्होंने अपने सम्पूर्ण लेखन में जनवादी मूल्यों की स्थापना की । वह जीवन का उसकी समस्याओं को सम्पूर्णता में देखते हैं । उनका विचार है कि, "वही सच्चा साहित्यकार है जो अपने समाज के परिवर्तनों तथा संघर्षों से अवगत होते हुए न्याय के साथ चलता है ।" प्रेमचन्द के साहित्य से भारतीय शिक्षित वर्ग का मानसिक विकास हुआ और जीवन अनुभूतियों में तीव्रता आयी । प्रेमचन्द देश के व्यापारी तथा पूँजीवादी वर्ग के स्वार्थपरक नीति की कटु आलोचना करते हैं । राष्ट्रीय आन्दोलन में वह कांग्रेस की नीतियों को समझ गये थे कि बुरजुआ वर्ग अपने तथा अपने वर्ग के लाभ के लिए जन-आन्दोलन का उपयोग कर रहा है । इसीलिए उनकी पूरी सहानुभूति समाज के निम्नवर्ग के प्रति थी । सामन्तवादी तथा साम्राज्यवादी शोषण का ही चित्र हमें प्रेमचन्द साहित्य में नहीं मिलता, अपितु इस व्यवस्था के विरुद्ध जनता के संगठित असंगठित संघर्षों एवं विद्रोहों का भी जीवन चित्रण मिलता है ।

भारतीय स्वाधीनता किसानों की मुक्ति के बिना अपूर्ण है तथा उसकी सार्थकता भी सीमित अर्थ में है। प्रेमचन्द से पूर्व जो संघर्ष मध्यवर्ग का था प्रेमचन्द ने उस दायरे को समाप्त कर उसे किसान एवं मजदूरों तक पहुँचाया तथा यह भी बताया कि किसान और मजदूरों को साथ लेकर ही हम राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को सफल बना सकते हैं।

प्रेमचन्द की कृतियों का आधार यथार्थवादी दृष्टिकोण है। प्रेमचन्द के ही शब्दों में, "यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुणा हैं, वहीं इस बात की शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धान्तों की मूर्ति मात्र हों, जिनमें जीवन न हो- - - इसीलिए वही उपन्यास/उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो जाता है उसे आज आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद भी कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए।"

प्रेमचन्द जन चेतना से पूर्ण, जन संघर्ष को स्वर देती हुयी रचनाओं की सृष्टि करते हैं उनका आदर्श काल्पनिक न होकर यथार्थ की ठोस जमीन के अधिक निकट है। प्रेमचन्द उपन्यासकार, कथाकार, पत्रकार, सम्पादक तथा चिंतक सभी रूपों में जन सामान्य से जुड़ते हैं तथा उसकी समस्याओं को अपनी कहानियों और उपन्यासों की पृष्ठभूमि बनाते हैं। स्वतंत्रता से पूर्व प्रेमचन्द ने जिन जनवादी मूल्यों की स्थापना साहित्य में की, उस परम्परा को निराला, नागार्जुन, रेणु, यशपाल आदि ने विकसित किया। निराला की जुही की कली तथा संध्या सुन्दरी के समानान्तर ही उनकी "तोड़ती पत्थर" तथा भिक्षुक जैसी रचनाएँ हमारे सामने आती हैं।

1936 में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ का ऐतिहासिक सम्मेलन लखनऊ में सम्पन्न हुआ। "भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ" के लिए जो घोषणा पत्र तैयार किया गया, वह देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक सन्दर्भों से जुड़ा हुआ था। प्रगतिशील लेखक संघ को फासिज्म

और साम्राज्यवाद विरोधी संगठन का रूप दिया गया। स्वतंत्रता उपरांत पूँजीवादी शोषण के व्यापक विरोध को हम सन् 1967 के आम चुनावों में देख सकते हैं। इस समय साहित्य को जनवादी विचारधारा से पुर्नजीवन मिला।

दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली में सन् 1977 में जनवादी विचार मंच की स्थापना हुयी तथा इसी मंच के तत्वाधान में 14-15 अक्टूबर 1978 को दिल्ली में हिन्दी के लेखकों का एक शिविर आयोजित किया गया। जिसमें दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, बिहार, मध्यप्रदेश, पश्चिमी बंगाल के लगभग 250 लेखकों ने भाग लिया।

शिविर का केन्द्रीय विषय था 1967 से 1977 तक जनवादी साहित्य के दस वर्ष। इस विषय के विस्तृत अध्ययन व विश्लेषण के लिए इसे चार खण्डों में विभाजित किया गया। प्रत्येक खण्ड पर एक गोष्ठी रखी गई। प्रथम गोष्ठी 67 से 77 तक की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि के अध्ययन से सम्बद्ध थी। दूसरी गोष्ठी "लघुपत्रिका आन्दोलन के विकास" तथा आलोचना के विकास से सम्बद्ध तथा तीसरी और चौथी क्रमशः "कथा साहित्य के विकास तथा "काव्य साहित्य के विकास" से सम्बन्धित थी।

शिविर के आरम्भ में दिल्ली के जन नाट्यमंच के अनेक कलाकारों ने जनवादी गीतकार स्वर्गीय शैलेन्द्र के गीत, "तू जिन्दा है तो जिंदगी के गीत पर यकीन कर.... तथा प्रसिद्ध अमन गीत, "अमन के हम रखवाले सब एक हैं, गाकर सभी उपस्थित साहित्यकारों का उद्बोधन किया।

जनवादी विचार मंच को हम जनवादी आन्दोलन की भूमिका कह सकते हैं, जिसका प्रारम्भ जनवादी लेखक संघ की स्थापना के साथ सन् 1982 में दिल्ली में हुआ। 13-14 फरवरी 1982 को दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ। इसमें संघ द्वारा घोषणा पत्र भी जारी करने वाले लेखकों के नाम इस प्रकार हैं : अयोध्यासिंह, अवधनारायण सिंह,

आईदानसिंह, भाटी, इसराइल, ओमप्रकाश ग्रेवाल, ऋतुराज, कमर मेवाड़ी, कर्णसिंह चौहान, कान्तिमोहन, काजी अब्दुल सत्तार, कुंवरपाल सिंह, गंगा प्रसाद विमल, चंचल चौहान, चन्दवाली सिंह, चंदभूषण तिवारी, छेदीलाल गुप्त, जमना प्रसाद ठाड़ा राही, नंदकिशोर बेड़ा, नईम अहमद, नमितासिंह, नीलकंठ, पारस अरोड़ा, बच्चन सिंह, बी० आर० प्रजापति, बृजेन्द्र कौशिक, भैरवप्रसाद गुप्त, मनमोहन महादेव सारा, महेन्द्र नेह, मानसिंह खयाल, मार्कण्डेय, माहेश्वर मुकुट बिहारी सरोज, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, यादव चंद्र पाण्डे, रमेश उपाध्याय, रमेश कुन्तल मेघ, रमेश शर्मा, राजकुमार शर्मा, विमल वर्मा, विशम्भरनाथ उपाध्याय, शिवकुमार मिश्र, शिवराम, शिववर्मा शीन श्री हर्ष, सतनकुमार, सव्यसाची, सुधीरपचौरी, हरीश भादानी, हेतु भारद्वाज ।

इस घोषणा पत्र में जनवादी लेखक संघ के लेखकों तथा उनके कार्य और दायित्व के बारे में अनेकों बातें कही गयी जैसे—जनवादी लेखक संघ ऐसे लेखकों का संगठन है जो साम्प्रदायिक संकीर्णता, जातिवाद, पुनरुत्थानवाद, विघटनवाद तथा अन्तराष्ट्रवाद और भाषा तथा क्षेत्रीयता के नाम पर हमारी जनता तथा राष्ट्र की एकता को तोड़ने वाली शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करते हैं ।

जनवादी लेखक संघ ऐसे लेखकों का संगठन है जो तथाकथित विश्व मानवतावाद की साम्राज्यवादी विचारधारा के विरुद्ध संघर्ष करना अपना राष्ट्रीय दायित्व समझते हैं क्योंकि इसकी आड़ में साम्राज्यवाद साधारण जनता को तथा बुद्धिजीवियों को हमारी राष्ट्रीय संस्कृति से विच्छिन्न करने का प्रयास करता है ।

यह ऐसे लेखकों का संगठन है जो अन्धी आधुनिकतावाद के विरुद्ध संघर्ष करना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि अन्धी आधुनिकता हमारे साहित्य की सारी यथार्थवादी तथा जनवादी परम्पराओं को समाप्त करने का षड्यन्त्र करता है ।

जनवादी लेखक संघ के प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन के बाद जनवादी पत्रिकाओं जैसे—कलम §कलकत्ता से§, कथन §दिल्ली§, उत्तरगाथा §मथुरा§ तथा बाद में दिल्ली से, उत्तरार्द्ध §मथुरा§, कंक §रतनाम§ की व्यापक चर्चा प्रारम्भ हुयी । समय-समय पर जनवादी लेखक संघ के अनेक सम्मेलन आयोजित किये जैसे—दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का क्षेत्रीय सम्मेलन दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का राष्ट्रीय सम्मेलन, जनवादी लेखक संघ द्वारा जारी प्रेस वक्तव्य, शिमला और विदिशा में जनवादी लेखक संघ के सम्मेलन, दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का पहला राज्य सम्मेलन, बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पश्चिमी बंगाल में जनवादी लेखक संघ के राज्य सम्मेलन, जनवादी लेखक संघ के राज्य सम्मेलन, जनवादी लेखक संघ का मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र राज्य सम्मेलन, जनवादी लेखक संघ कलकत्ता जिले का प्रथम सम्मेलन, जनवादी लेखक संघ का जिला सम्मेलन, जनवादी लेखक संघ का प्रथम राजस्थान राज्य सम्मेलन आदि ।

इस जनवादी लेखक संघ का उद्देश्य ऐसे लेखकों का संगठन तैयार करना है जो साहित्य की वस्तु, रूप और शैली के बारे में अपने दृष्टिकोणों और रुचियों की भिन्नता के बावजूद जनवाद को हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक नियति का एक अभिन्न अंग मानते हैं जो उसे हमारी सभ्यता और संस्कृति के विकास की एक अनिवार्य शर्त मानते हैं और जो उसकी रक्षा और विकास के संघर्ष को अपना एक आवश्यक लेखनीय कर्तव्य समझते हैं तथा उनका हित जनता के हित से पूरी तरह जुड़ा हुआ है ।

डॉ० कुँवरपाल सिंह एक स्थान पर लिखते हैं, "साम्राज्यवाद पूँजीवाद और सामन्ती व्यवस्था और उनके जीवन मूल्यों का सक्रिय विरोध, श्रमिक वर्ग और पीड़ित जन के साथ वास्तविक हमदर्दी देशभक्त क्रान्तिकारी शक्तियों की एकता और उसके संकल्प का नाम जनवाद है ।"

जनवाद का उद्देश्य साम्राज्यवाद पूँजीवादी तथा सामन्ती व्यवस्था के स्थान पर जनता के प्रजातंत्र की स्थापना साहित्य और कला के क्षेत्र में शोषित

उत्पीड़ित वर्ग की भावनाओं संकल्पों, सुख-दुख, जय-पराजय और संघर्षों की यथार्थ अभिव्यक्ति का नाम ही जनवाद है। पतनशील सामंती मूल्यों, साम्राज्यवादी और बुर्जुआ संस्कृति के स्थान पर जनवादी संस्कृति की स्थापना, जनवादी साहित्य का प्रमुख लक्ष्य होता है -- जनता को शिक्षित करना, उनके संघर्षों और जीवन को स्वर प्रदान कर उन्हें आगे बढ़ाने में जनवादी साहित्य प्रेरणा देता है। जो जनता मूल परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है उस तक जनवादी साहित्य को पहुँचाना प्रतिबद्ध, जागरूक और जनवादी साहित्यकार के लिए आवश्यक है।

मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है और समाज दो वर्गों में विभक्त, एक वर्ग निरन्तर साधनहीन वर्ग का शोषण तथा श्रम चुरा कर बलवान और धनवान बनता जाता है। वह सदा इस प्रयत्न में लगा रहता है कि उसका मिथ्या प्रभुत्व बना रहे तथा सत्य उद्घाटित न हो। साधन सम्पन्न वर्ग की प्रभुता शोषित-वर्ग के श्रम का परिणाम होता है, यही कारण है कि यह वर्ग निरन्तर जीवन के सत्यों की खोज का प्रयत्न करता है और इसी सत्य की खोज में वह जनवाद तक पहुँचा तथा उसको स्वर देता हुआ साहित्य जनवादी साहित्य आन्दोलन तक।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में वैज्ञानिक उन्नति ने जन चेतना को अधिक तर्कसंगत और वैज्ञानिक बना दिया जिससे मनुष्य ने समाज के दुर्गुणों का वैज्ञानिक विश्लेषण तथा संश्लेषण करना शुरू किया तथा शोषण विहीन समाज की तर्कसंगत वैज्ञानिक समाधान ढूँढ़ा जिसका श्रेय मार्क्स तथा एंगेल्स को जाता है आज विश्व में मार्क्सवाद शोषित उत्पीड़ित गरीब वर्गों की विचार धारा के रूप में हर समाज में विकसित हो रहा है। हिन्दी साहित्य में मार्क्सवाद की इस वैज्ञानिक विचारधारा पर जनवादी साहित्य तथा जनवादी आन्दोलन विकसित हुआ। यह साहित्य सामान्य जन के संघर्ष का पक्षधर साहित्य है। जनवादी साहित्य के संघर्षरत पात्र निर्णय लेने की स्थिति में होते हैं तथा वे

अपने संघर्ष की दिशा को अच्छी तरह पहचानते हैं। वे अपने अधिकारों के प्रति पूर्ण सजग और संघर्षरत हैं और वे ये भी जानते हैं कि उनके अन्तर्विरोधों से ही उनका संघर्ष कमजोर बनता है। इसलिए अन्याय के विरुद्ध जन सामान्य की एकता पर बल देता है, कहीं-कहीं तो मानव अधिकारों के लिए हिंसक कार्यों को समर्थन देता है लेकिन कुछ अपवादों को छोड़कर जनवादी साहित्य में व्यक्ति संघर्ष हिंसक नहीं है परन्तु पूर्णस्मिण अहिंसक भी नहीं है। यह साहित्य बौद्धिक समझ से अनुशासित है।

जनवादी साहित्य अपने आस पास की दुनिया से सच्चा रिश्ता कायम करता है तथा चारों ओर बिखरे जीवन को अपने साहित्य का विषय बनाकर उसके आम जीवन को उसी की सामान्य भाषा में अभिव्यक्त कर देता है। सामान्य जन से जुड़ाव के कारण इस साहित्य में जीवन के वास्तविक स्पर्दन को सहज ढंग से स्थापित होता है।

जनवादी साहित्य वैचारिक स्तर पर मार्क्सवादी विचारधारा का पोषण करता है परन्तु वह विचारधारा को रचनाकार के अनुभव का अंग बनाकर अभिव्यक्त करने में विश्वास करती है। इस तरह हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आज तक की जनवादी अवधारणा को देखकर, यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जनवादी साहित्य ने ऐतिहासिक कार्य किया है साहित्य को जनसामान्य से जोड़ने की सच्ची परम्परा को समृद्ध किया, अतः यह एक संकीर्ण आन्दोलन न होकर हिन्दी साहित्य का एक व्यापक आन्दोलन है जिसकी जड़ें जीवन इतिहास की ठोस जमीन में हैं।

xxx

सहायक पुस्तकें :

1. जनवादी समीक्षा नया चिंतन : नये प्रयोग
चंचल चौहान
2. उत्तरार्द्ध का जनवादी साहित्य विश्लेषक
संपादक--सत्यसाची
3. जनवादी साहित्य के दस वर्ष १९६७-७७
प्रकाशक--जहूर सिद्दीकी

द्वितीय- अध्याय =====

"हिन्दी पत्रकारिता : उद्भव और विकास"

हमारे देश भारत में मुद्रण यंत्र की स्थापना का श्रेय पुर्तगालियों को है । 1550 में उन्होंने दो मुद्रण यंत्र लगाकर धार्मिक पुस्तकों को प्रकाशित करना शुरू किया । इसके उपरान्त 1674 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बम्बई में मुद्रण यंत्र लगाया और अठारहवीं शताब्दी के शुरू होते-होते अंग्रेजों और ईसाई मिशनरियों ने मद्रास, कलकत्ता, हुगली, बम्बई आदि में मुद्रण यंत्र लगाये और पहली बार अखबार शुरू किया ।

1829 में राजा राम मोहन राय ने समाज की कुरीतियों के प्रति शिक्षित वर्ग को आन्दोलित करने के लिए "संवाद कौमुदी" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया और उसमें सती प्रथा के विरुद्ध लिखना शुरू किया । फारसी में भी "जाम-ए जहानुमा" और 'मीरत-उत-अखबार" दो पत्र निकल रहे थे । इसी समय 1822 में बम्बई से गुजराती में 'बाम्बे समाचार' निकलना शुरू हुआ ।

इस समय की पत्र पत्रिकाओं का सीधा सम्बन्ध जन जागरण से था । जन-साधारण अपने ऊपर हो रहे अन्याय या पक्षपात के विरुद्ध आवाज बुलन्द करने के लिए पत्र पत्रिकाओं का सहारा लेते थे । हिन्दी का पहला समाचार पत्र "उदत्त मार्तण्ड" कलकत्ता से निकला । उस समय जन जागरण का केन्द्र कलकत्ता नगर था । हिन्दी पत्रकारिता का आरम्भ वहीं से हुआ । इस समय अधिकतर साप्ताहिक पत्रों का ही प्रकाशन हुआ । जैसे- 'उदत्त मार्तण्ड' 1826 साप्ताहिक, 'कलकत्ता बंगदूत' 1829 साप्ताहिक कलकत्ता, 'प्रजा मित्र' 1834 साप्ताहिक कलकत्ता, 'बनारस अखबार' 1845 साप्ताहिक बनारस, 'मार्तण्ड' 1846 साप्ताहिक कलकत्ता, 'मालवा अखबार' 1849 साप्ताहिक मालवा,

‘सुधाकर’ 1850 साप्ताहिक काशी, ‘बुद्धि प्रकाश’ 1852 साप्ताहिक आगरा, ‘समाचार सुधावर्ष’ 1854 दैनिक कलकत्ता, ‘प्रजाहितैषी’ 1855 आगरा, ‘तत्त्व-बोधिनी’ पत्रिका 1864 बरेली, ‘ज्ञानप्रदायिनी’ पत्रिका 1866, मासिक लाहौर, ‘वृत्तान्त विलास’ 1867 मासिक जम्बू । इसमें से अधिकांश पत्रिकाएं दो तीन भाषाओं में निकलती थीं यद्यपि इसमें प्रयुक्त हिन्दी भाषा टूटी-फूटी और अपरिमार्जित होती थी ।

भारतेन्दु युग § 1857 से 1900§ तक आते-आते पत्रकारिता तथा साहित्यकारिता एकात्म हो गयी और शायद ही ऐसा कोई साहित्यकार हो जिसका सम्बन्ध किसी न किसी पत्र या पत्रिका से न रहा हो । भारतेन्दु ने “हरिश्चन्द्र मैगजीन”, प्रताप नारायण मिश्र ने “ब्राह्मण”, बालकृष्ण भट्ट ने “हिन्दी प्रदीप”, बदरीनारायण चौधरी ने “आनन्द कादम्बिनी”, श्री निवासदास “सर्पादिश” और राधाचरण गोस्वामी ने “भारतेन्दु” का सम्पादन किया । इन साहित्यकारों द्वारा सम्पादित पत्रिकाओं का उद्देश्य देश व समाज की समस्याओं पर प्रकाश डालना नये वैज्ञानिक विचारों के लिए भूमि तैयार करना, जनतांत्रिक भावनाओं का संचार करना, सामाजिक रुढ़ियों एवं कुरीतियों पर प्रहार करना, राष्ट्रीय चेतना का विकास करना तथा सुधार और नवनिर्माण के लिए प्रेरणा देना था ।

भारतेन्दु युग में हिन्दी भाषा का स्वरूप स्थिर और परिमार्जित हुआ, जामरणा और सुधार की भावना का प्रसार हुआ तथा वर्णों और धर्मों में विभक्त भारतवासियों ने अपने जाति-वर्ग के उत्थान के लिए जातीय और धार्मिक पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ किया । पत्र पत्रिकाओं में गम्भीर लेख निकलने लगे और कुछ साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हुआ । इसके माध्यम से राष्ट्रीय चेतना भी अधिक प्रखर रूप में सामने आयी । इस युग में प्रकाशित प्रमुख पत्र पत्रिकाएं निम्नलिखित हैं—

“कविवचन सुधा” §मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक§ 1868 काशी, “जगत समाचार”

1869 साप्ताहिक आगरा, "सुलभ समाचार" 1869 साप्ताहिक कलकत्ता, "बिहार बन्धु" 1869 मासिक बांकीपुर, "चरणगात्रि चंद्रिका" 1873 साप्ताहिक बनारस, "हरिश्चन्द्र मैगजीन" 1873 मासिक बनारस, "बालाबोधिनी" 1874 मासिक बनारस, "भारतबन्धु" 1874 साप्ताहिक अलीगढ़, "काशी पत्रिका" 1875 साप्ताहिक काशी, "हिन्दी प्रदीप" 1877 मासिक इलाहाबाद, "कायस्थ समाचार" 1878 मासिक इलाहाबाद "आर्यमित्र" 1878 मासिक बनारस, "उक्ति वक्ता" 1878 साप्ताहिक कलकत्ता, "क्षत्रिय मित्र" 1880 मासिक बांकीपुर, "आनन्दकादम्बिनी" 1881 मासिक मिर्जापुर, "भारतेन्दु" 1883 वृन्दावन, "देवनागरी प्रचारक" 1882 मेरठ, "ब्राह्मण" 1883 मासिक कानपुर, "काशी समाचार" 1883 साप्ताहिक काशी, "इन्दु" 1883 मासिक लाहौर, "कान्यकुब्ज प्रकाश" 1884 लखनऊ, "हिन्दोस्थान" 1885 दैनिक कलाकांकर, "भारतोदय" 1885 दैनिक कानपुर, "आर्यावर्त" 1887 साप्ताहिक कलकत्ता, "रहस्य चन्द्रिका" 1888 पाक्षिक बनारस, "हिन्दी बंगवासी" 1890 साप्ताहिक कलकत्ता, "नागरी नीरद" 1893 साप्ताहिक मिर्जापुर, "साप्ताहिक सुधानिधि" 1894 मासिक काशी, "श्री वेंकटरवा समाचार" 1895 साप्ताहिक बम्बई, विद्याविनोद 1895 मासिक बांकीपुर, रसिक पत्रिका 1897 साप्ताहिक कानपुर, "उपन्यास" 1898 मासिक काशी, "पण्डित" पत्रिका 1897 मासिक काशी, सरस्वती 1900 मासिक इलाहाबाद । भारतेन्दु युग में ही यानी 1900 तक हिन्दी की 200 से ऊपर छोटी बड़ी पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं जिससे पता चलता है कि लोग पत्र पत्रिकाओं में कितनी गहरी रुचि लेने लगे थे ।

इस युग में राजनीति का प्रमुख केन्द्र बंगाल था । किन्तु भारतेन्दु के समय में हिन्दी क्षेत्र में भी राष्ट्रीयता की ज्वर आ गयी ।

हिन्दी पत्रकारिता का आरम्भ हिन्दी प्रदेश के बाहर बंगाल के कलकत्ता महानगर में हुआ । उन्नीसवीं शती के अन्त तक हिन्दी पत्रकारिता का केन्द्र कलकत्ता की रहा । बीसवीं शती में राजनीतिक क्षेत्र में बालगंगाधर तिलक

प्रभावशाली व्यक्ति थे, जो राजनीति में गणेश शंकर विद्यार्थी के समर्थक थे। उन्होंने 1908 में अपने "केसरी" पत्र का हिन्दी संस्करण "हिन्द केसरी" नाम से प्रकाशित किया जिसमें उनकी ओजस्वी तथा सारगर्भित सम्पादकीय टिप्पणियाँ प्रकाशित होती थीं। भारत मित्र, मारवाड़ी बन्धु तथा नृसिंह ये तीन कलकत्ता से प्रकाशित पत्र तिलक की प्रखर राजनीति से प्रभावित थे। द्विवेदी युग में दो प्रकार की पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं।

1. राजनीतिक

2. साहित्यिक

इस काल में प्रकाशित होने वाली राजनीतिक पत्रिकाएँ 'हितवाणी' 1904 कलकत्ता, 'नृसिंह' 1907 साप्ताहिक, 'अभ्युदय' 1907 साप्ताहिक, 'कर्मयोगी' 1909 साप्ताहिक, 'मर्यादा' 1909 मासिक, 'प्रताप' 1913 साप्ताहिक कानपुर, 'प्रभा' 1913 मासिक खण्डवा थी।

इस युग की साहित्यिक, सांस्कृतिक पत्रिकाओं में 'सरस्वती' 1900 मासिक इलाहाबाद, 'सुदर्शन' 1900 मासिक काशी, 'समाखोचना' 1902 मासिक जयपुर, 'देवनागर' 1907 मासिक कलकत्ता, 'इन्दु' 1909 मासिक काशी, 'मनोरंजन' 1912 मासिक शाहाबाद, 'प्रभा' 1913 मासिक खण्डवा, पाटलिपुत्र 1914 मासिक पटना थी।

इस तरह द्विवेदी युग में पत्रकारिता और लेखन का अलग-अलग विकास हुआ पर इन दोनों में राष्ट्रीय जागरण की चेतना सामान्य रूप से विद्यमान थी तथा दोनों का उद्देश्य व्यापक जन समुदाय को उद्बुद्ध करना था।

द्विवेदी युग की साहित्य-समृद्धि एवं भाषा परिष्कार में पत्र पत्रिकाओं का बहुत योगदान रहा। द्विवेदी युग में भारतेन्दु युग की अपेक्षा कुछ गम्भीर साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं। गद्य की विविध विधाओं एवं शैलियों के विकास में इस युग की पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। इस युग की श्रेष्ठ पत्रिका "सरस्वती" है। "सरस्वती" ने भाषा और साहित्य दोनों क्षेत्रों में नये युग का निर्माण किया।

द्विवेदी युग के पश्चात् छायावाद युग हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ होता है। मासिक पत्रिकाओं में सरस्वती, मर्यादा, और स्त्री दर्पण का तो पहले की भांति इस काल में भी प्रकाशन होता रहा तथा चांद, प्रभा, माधुरी, सुधा, विशाल भारत, हंस आदि भी उल्लेखनीय पत्रिकाएं हैं।

चांद का प्रकाशन आरम्भ में 1920 ई० में साप्ताहिक पत्र के रूप में हुआ था, परन्तु 1923 ई० में रामरख सहगल और चण्डी प्रसाद "हृदयश" के सम्पादन में इसका प्रकाशन मासिक पत्रिका के रूप में हुआ। इस युग की दूसरी प्रमुख पत्रिका प्रभा बालकृष्ण शर्मा नवीन के सम्पादन में निकलती थी।

जिसमें साहित्य की सभी विधाओं का प्रकाशन होता था माधुरी लखनऊ का प्रकाशन 1922 ई० में आरम्भ हुआ। यँ तो इसके सम्पादक दुलारे लाल भार्गव थे पर वास्तविक सम्पादन रूप नारायण पाण्डेय और कृष्णाबिहारी मिश्र द्वारा किया जाता था। प्रेमचन्द और शिवपूजन सहाय भी इसके सम्पादकीय विभाग में आये ठहर न सके। "माधुरी" से छायावाद को समर्थन मिला उसी समय छायावाद पर प्रहार करने वाली पत्रिका "सुधा" का अपना विशेष महत्त्व है किन्तु निराला के आगमन से इस पत्रिका का साहित्यिक स्वरूप बदल गया। इसके द्वारा आन्दोलन को समर्थन तथा भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा एवं साहित्य उन्नति का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ।

"कल्याण" मासिक का प्रकाशन 1925 में आरम्भ हुआ जिसका उद्देश्य था भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार का उपदेश देना। इनके विशेषांकों का धार्मिक साहित्य में विशेष महत्त्व है। इसका प्रकाशन 1928 में बनारसी दास चतुर्वेदी के सम्पादन में कलकत्ता से हुआ जिसमें उच्चकोटि का साहित्य प्रकाशित होता था। यह अपने समय की एक तेजस्वी और जागरूक पत्रिका थी।

प्रेमचन्द द्वारा सम्पादित "हंस" बनारस 1930 ई० तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण माध्यम बना तथा कुछ ही समय में हिन्दी कथा-साहित्य का प्रतिनिधि पत्र बन गया। कथा साहित्य के अतिरिक्त इसमें उच्च कोटि की कविताएं, एकांकी निबन्ध तथा आलोचनाएं भी प्रकाशित हुयीं।

प्रेमचन्द की पश्चात् शिवदान सिंह चौहान, अमृतराय आदि ने हंस का सम्पादन किया। यह युग की एक महत्वपूर्ण एवं जागरूक मासिक पत्रिका थी।

छायावाद युग की अन्य मासिक पत्रिकाओं में "आदर्श" "मौजी", "समन्वय", "सरोज", "साहित्य संदेश", आदि का भी महत्वपूर्ण स्थान है। "आदर्श" और "मौजी" का सम्पादन शिवपूजन सहाय ने किया जो कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। इस पत्रिकाओं में हिन्दू-मुस्लिम एकता, नारी समस्या राष्ट्र भाषा की समस्या आदि विषयों पर लेख तथा निराला आदि की कविताएं प्रकाशित होती थीं। "समन्वय" का प्रकाशन 1922 ई० में रामकृष्ण मिशन के स्वामी माधवानन्द के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ, बाद में निराला जी ने इसका सम्पादन कार्य किया। इस पत्रिका में धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक विषयों की प्रधानता होने पर भी उच्चकोटि की साहित्यिक सामग्री प्रकाशित होती थी। "साहित्य संदेश" का प्रकाशन गुलाब के सम्पादन में जुलाई 1937 में आरम्भ हुआ यह शुद्ध रूप से आलोचनात्मक पत्रिका थी।

इस युग में मासिक पत्रिकाओं के साथ-साथ अनेक साप्ताहिक और पाक्षिक पत्र पत्रिकाएं भी निकले। इसमें "मतवाला" "जागरण" और 'भारत' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "मतवाला" 1923 में कलकत्ता से निकला, यह हिन्दी का पहला हास्य व्यंग्य प्रधान साप्ताहिक था। यह एक साहित्यिक पत्र था, परन्तु सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं को भी इसमें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। "जागरण" बृजनारस से शिवपूजन सहाय के सम्पादकत्व में प्रकाशित एक साप्ताहिक पत्र था। यह पत्रिका छायावाद की घोर समर्थक थी। 1932 ई० में इसे प्रेमचन्द का संरक्षण प्राप्त हुआ, किन्तु 1934 ई० में इसका प्रकाशन बन्द हो गया। इस युग के अन्य साप्ताहिकों में "कर्मवीर", "देश", "हिन्दी नवजीवन", "सेनापति", "हिन्दूपंच", और 'श्रीकृष्ण संदेश' प्रमुख थी।

दैनिक पत्रों का साहित्यिक दृष्टि से कम महत्व होने पर भी पत्र पत्रिकाओं के इतिहास में इस का महत्वपूर्ण योगदान है। इस युग से पहले दैनिक पत्र न के बराबर थे और जो थे भी वह अनियमित तथा साधारण थे। हिन्दी

का पहला सुसंगठित दैनिक "भारतमित्र" का प्रकाशन 1935 ई० में हुआ। इस युग के अन्य दैनिक पत्रों में "दैनिक विश्वमित्र" और "आज" प्रमुख हैं। इस युग के अन्य पत्रों में "कलकत्ता समाचार" और "स्वतन्त्र" भी उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रेमचन्द एक क्रान्तिकारी प्रवर्तक के रूप में आये तथा उन्होंने उस युग के लेखकों तथा पत्रकारों के लिए दिशा निर्देशक का काम किया। उनके जीवन के अन्तिम समय में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई तथा उन्होंने लेखकों के स्थापना सम्मेलन में जो अध्यक्षीय भाषणा पढ़ा। वह आज भी रचनाकारों तथा साहित्यिक पत्रकारों के लिए एक मशाल का काम करता है।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना से हिन्दी साहित्य में एक आन्दोलन की शुरुआत हुई, जो सामाजिक चेतना से युक्त लेखकों का संगठन था। इससे पहले के लेखक राष्ट्रभक्त थे तथा मुक्ति आन्दोलन से जुड़े हुये थे परन्तु उनका कोई अपना संगठन या आन्दोलन नहीं था। प्रगतिशील लेखकों ने पहली बार अपने संगठन आन्दोलन और लेखन का उद्देश्य स्पष्ट किया कि वे कम्युनिस्ट पार्टी के उस संघर्ष के सहयोगी हैं जो देश को अंग्रेजों के शासन से मुक्त करने के साथ ही देश के अन्दर शोषण, पूँजीपति और सामंत वर्गों के शोषण से आम जनता को मुक्त कर समाजवादी व्यवस्था कायम करने के लिए चल रहा था। इस आन्दोलन से क्रान्तिकारी साहित्यिक सांस्कृतिक जागरण का वातावरण निर्मित हो गया। इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने में नया साहित्य हंस, प्रगति आदि मासिकों, कर्मवीर, सारथी, लोकयुद्ध आदि साप्ताहिकों तथा आज, सैनिक, वीर अर्जुन शक्ति आदि दैनिकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

स्वतंत्रता के बाद अंग्रेजी मालिकों से देश के पूँजीपतियों ने अखबार खरीद लिये और यह सोचकर की देशी सरकार हिन्दी को बढ़ावा देगी सभी अंग्रेजी अखबारों के हिन्दी संस्करण भी निकलने लगे। "टाइम्स आफ इण्डिया" के साथ "नवभारत टाइम्स", "हिन्दुस्तान टाइम्स", के साथ "दैनिक हिन्दुस्तान"

"अमृत बाजार", पत्रिका के साथ "अमृत प्रभात", पायनियर के साथ "स्वतंत्र भारत", "नेशनल हेराल्ड" के साथ नवजीवन" सर्वलाइट के साथ प्रदीप, "नेशन" के साथ आयचित आदि ।

समाचार पत्रों के औद्योगीकरण के साथ पूंजीवादी और व्यावसायिक स्वार्थ का ऐसा बोलबाला हो गया जिससे राष्ट्रीय तथा आदर्श निष्ठ पत्र पत्रिकाएं या तो बन्द हो गयीं या तो पूंजीवादी पत्रिकाओं में शामिल हो गयीं । साहित्य में साम्यवाद, मार्क्सवाद और प्रगतिवाद का विराध करने के लिए सी० आई० ए० के गोपनीय तत्त्वाधान में प्रयोगवादियों ने कुछ पत्र निकाले जैसे "प्रतीक" §सं० अज्ञेय§, "निकष" §सं० धर्मवीर भारती§ "नयी कविता" §सं० जगदीश गुप्त§, कख ग §सं० रघुवंश§ आदि । लेकिन कुछ समय बाद ही ये पत्रिकाएं बन्द हो गयीं । इस समय तक आते-आते हिन्दी में एक साप्ताहिक पत्र कल्पना रह गयी थी जिसमें लोहियावादी सेठ बट्टी विशाल पित्ती अपना धन लगा रहे थे । धर्मयुग §बम्बई§ तथा "हिन्दुस्तान साप्ताहिक" पूंजीवादी व्यवसायिक बन कर रह गयी । मासिक पत्रिकाओं में "कल्पना" "अष्टा" दो अच्छी पत्रिकाएं प्रकाशित हुयीं इसमें से "कल्पना" तो आज भी किसी न किसी रूप में जीवित है ।

कहानी पत्रिका "कहानी" जो एक बार बन्द हो चुकी थी पुनः 1954 में इलाहाबाद से प्रकाशित होने लगी प्रेमचन्द तथा प्रगतिवाद की परम्परा 1960 तक "कहानी" पत्रिका के माध्यम से 1964 तक "नयी कहानी" पत्रिका के माध्यम से चलता रहा ।

हिन्दी साहित्य में अब अनगिनत आन्दोलनों और उनकी लघु पत्रिकाओं का सूत्रपात हुआ तथा "कविता", "भूखी पीढ़ी", "शमशानी पीढ़ी", "संचितना" आदि अनेक नामों से पत्रिकाएं प्रकाशित हुयीं । इस तरह "नयी कविता" और "नयी कहानी" आन्दोलन के अवसान काल में हर छोटी पत्रिका नये साहित्यिक आन्दोलन का उदघोष करती । इसी परिस्थिति में "आमुख" §कंचनकुमार§ "युयुत्सा" §शालभ श्रीराम सिंह§ "शताब्दी" §ओंकार ठाकुर§ "उत्कर्ष" §गोपाल

उपाध्याय॥ "वाम" ॥चन्द्रभूषण तिवारी॥ "कथा" ॥मार्किण्डेय॥ "फौलाद" ॥नील कांत॥ आदि कई छोटी पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ । इस तरह कहा जा सकता है कि इस समय वामपंथी बुद्धि जीवियों ने इस दिशा में हस्तक्षेप की आवश्यकता महसूस की कि सार्त्र, कामू, काफ़्का, एलेन गिस्वर्ग आदि भारत की कठोर परिस्थिति के सन्दर्भ में अप्रासंगिक है । सन् 1965-66 से सन् 1969-70 तक जो विचारधारात्मक अभियान वामपंथी युवा समीक्षकों, लघुपत्रिकाओं के सम्पादकों और पुरानी पीढ़ी के प्रगतिशील लेखकों ने चलाया उसी का परिणाम था कि युवा लेखन तथाकथित विद्रोह और आक्रोश के पेटी बुरुआ भटकाव से मुक्त हुआ ।

इस समय की शोध पत्रिकाओं में "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" ॥वाराणसी॥, "हिन्दी अनुशीलन" ॥इलाहाबाद॥, "हिन्दुस्तानी ॥इलाहाबाद॥ "सम्मेलन पत्रिका" ॥इलाहाबाद॥, "आलोचना" ॥दिल्ली॥ आदि प्रमुख थी । वैज्ञानिक क्षेत्र में ॥ "विज्ञान" ॥प्रयाग, "वैज्ञानिक" ॥बम्बई॥, ॥"किसान भारती" ॥पन्त नगर॥ "इंजीनियर पत्रिका" ॥कलकत्ता॥, "विज्ञान प्रगति" ॥दिल्ली॥, "विज्ञान परिषद्" अनुसंधान पत्रिका ॥प्रयाग॥ आदि उल्लेखनीय हैं ।

"पूर्वाग्रह", "साक्षात्कार", तथा "आजकल" इस समय की शासकीय पत्रिकाएं हैं और "आजकल" दिल्ली के निर्विचार लेखकों की प्रभावहीन पत्रिका है । इसके अतिरिक्त बहुत सारी लघु पत्रिकाएं निकलीं, जिसमें "कथन", "कलम" उत्तरार्द्ध, उत्तरगाथा पहल आदि प्रमुख हैं ।

कथन रमेश उपाध्याय द्वारा सम्पादित जनवादी तथा क्रान्तिकांक्षी लेखकों की पत्रिका है । इस पत्रिका ने बहुत कम समय में लेखकों तथा पाठकों के बीच अत्यधिक लोकप्रियता और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली । रमेश उपाध्याय के परिश्रम और सूझ बूझ से यह आशा बंधी थी कि यह पत्रिका विकसित होकर साहित्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी, परन्तु दुर्भाग्यवश इसके मात्र 20 अंक ही प्रकाशित हो सके । उत्तरार्द्ध और उत्तरगाथा का सम्पादन सव्यसाची कर रहे थे । इसके सभी अंक बहुत अच्छे निकले -- विषयांक तो और भी महत्वपूर्ण और संग्रहणीय है ।

इस तरह कहा जा सकता है कि नौवा दशक आठवें दशक से कहीं अधिक आश्चर्यजनक और उत्साहवर्धक है । इस दशक में फिर साहित्य और पत्रकारिता में सामाजिक, सांस्कृतिक तथा क्रान्तिकारी चेतना का व्यापक वातावरण निर्मित हुआ ।

xx

सहायक पुस्तकें :

1. स्वतंत्रता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता
डा० अर्जुन तिवारी
2. भाषायी - पत्रकारिता और जनसंचार
डा० विष्णु पंकज
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास
सं० डा० नगेन्द्र
4. हिन्दी पत्रकारिता
डा० कृष्ण बिहारी मिश्र
5. उत्तरार्द्ध का प्रेमचन्द विश्लेषण
सं० सत्यसाची

तृतीय अध्याय

=====

लघु पत्रिका आन्दोलन का उद्भव और विकास -

सन् 1967 को छोटी पत्रिकाओं के प्रकाशन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इससे पूर्व साहित्यिक पत्रकारिता की परम्परा नहीं मिलती। जनता की जनवादी क्रान्ति के इस दौर में जनसामान्य के कार्य भार को सहेत होकर पूरा करने के लिए संस्कृति के क्षेत्र में वामपंथी बुद्धिजीवियों की ओर से जन के संघर्ष और उनकी रचनाशीलता के प्रति अनुरागमयी दृष्टि के कारण राष्ट्रीय स्वधीनता आन्दोलन के साथ उभरी जनवादी पत्रकारिता आन्दोलन से इस दौर की पत्रिका पुनः जुड़ी। भारतेन्दु, राधाचरण गोस्वामी, बाल कृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, गणेश शंकर विद्यार्थी, कृष्णाकान्त मालवीय, प्रेमचन्द और यशपाल, आचार्य नरेन्द्र देवा, गंगाधर अधिकारी की जनवादी पत्रकारिता की जो परम्परा पिछले तीस सालों के अन्दर पूँजीवादी घरानों की वकालत में निकली पत्रकारिताओं ने नष्ट किया था उससे न हम इस दौर में आकर सहेत हुए बल्कि अपने इन क्रान्तिकारी पूर्वजों की विरासत को नये जनवादी उभार काल में सुरक्षित संरक्षित कर उसे और भी जीवन्त तथा शक्तिशाली रूप देने का काम भी शुरू किया।

“लघु पत्रिका विशाल उत्पीड़ित जनसमूह की संघर्षशीलता और तदनुरूप गतिशील कलात्मक अभिव्यक्ति पर कायम है।”

लघु पत्रिका आन्दोलन इस लिहाज से भारतेन्दु की “हरिश्चन्द्र चंदिका और कविवचन सुधा”, राधाचरण गोस्वामी के तार सुधा निधि, बालकृष्णभट्ट के हिन्दी प्रदीप, बालमुकुन्दगुप्त के भारत मित्र की निर्भीकता

से अपने को जोड़ती है। जनवादी पत्रकारिता की यह परम्परा धीरे-धीरे सुस्पष्ट रूप लेती गयी तथा देश भक्त और "निजभाषा उन्नति" के प्रथम जागरण मंत्र का आह्वान करते हुए भारतेन्दु ने जो परम्परा शुरू की उसी के बुनियाद पर आचार्य द्विवेदी ने "सरस्वती" कृष्णाकांत मालवीय की "मर्यादा" निराला के "मतवाला" बेनीपुरी के "युवक", गणेशशंकर विद्यार्थी के "प्रताप" प्रेमचन्द का "जागरण" और "हंस" पंत के "स्वाभ", यशपाल के "विप्लव", आचार्य नरेन्द्र देव का "संघर्ष", गंगाधर अधिकारी के "जनयुग", रामविलास शर्मा के "नया साहित्य" आदि पत्रों में जनवादी पत्रकारिता को सुदृढ़ आधार पर प्रतिष्ठित किया।

जनवादी पत्रकारिता की इस परम्परा को खत्म करने की कोशिश प्रतीक, कल्पना, कृति, नई कविता, निष्पक्ष संगम आदि साहित्यिक पत्रों द्वारा किया गया परन्तु सन् 1967 आते-आते संघर्ष जन गण फिर मोर्चे पर आ गये और एक ऐसी परिस्थिति पैदा हुयी कि साहित्य का मोर्चा संभालने के लिए भारत में जनवादी और वामपंथी बुद्धिजीवियों को विवश करने लगे। तभी "कथा", "वाम" "युयत्सा", "आमुख", "शताब्दी", "और", उत्तरार्द्ध", "संप्रेषण", "सर्वनाम" "युगपरिबोध", "भंगिमा", "क्यों", "समारंभ", "पुरुष", "बातचीत", आदि लघु पत्रिकाओं का प्रकाशन सहसा ही समवेत एकजुटता की श्रृंखला में आबद्ध होकर आन्दोलन का रूप लेने लगा।

लघु पत्रिका आन्दोलन रचनाशीलता के स्तर पर पूंजीवादी रूपवादी भटकाव और मात्र नारेबाजी के वामपंथी भटकाव से साहित्य को मुक्त कर उसे ठोस जमीन पर खड़ा किया। इससे संस्थानीय स्तर पर जनवादी साहित्य का एक विशाल पाठकवर्ग तैयार हुआ, जनता का आश्रय प्राप्त होने से पत्रिका साधन सम्पन्न हुयी तथा तमाम उत्पीड़ित वर्ग के लोग मुनासिब कार्रवाई के लिए संगठन के आस-पास इकट्ठे हुये।

इस समय की पत्रकारिता का स्थूल में दो भागों में सरलता से

विभाजित किया जा सकता है---

1. व्यवसायिक पत्रिका ।
2. साहित्यिक पत्रिका ।

साहित्य के "व्यवसायिकरण" और "साहित्यीकरण" के इस दौर में ही तथाकथित बड़ी और छोटी अथवा "व्यावसायिक" और "अव्यावसायिक" पत्रिकाओं की चर्चा शुरू हुई और दोनों प्रकार की पत्रिकाओं के बीच एक गलत किस्म की लड़ाई ठन गयी और यह लड़ाई एक गलती से शुरू हुयी थी कि व्यवसायिक पत्रिकाएं भी साहित्यिक पत्रिकाएं हैं या हो सकती हैं । इस गलत फहमी का आधार यह था कि व्यावसायिक पत्रिकाओं में जो लोग सम्पादक नियुक्त हुये वे साहित्यकार थे और प्रायः साहित्यिक पत्रकार भी रह चुके थे । "प्रतीक" के अज्ञेय, "निकष" के भारती, "विहीन" के कमलेश्वर या "कृति" के श्रीकांतवर्मा से यह उम्मीद की गयी कि वे जिन पत्रों में काम कर रहे हैं, उनका उपयोग साहित्य के लिए करेंगे पर ऐसा नहीं हुआ ।

व्यवसायिक पत्रिकाओं ने अपने समर्थन में कुछ तर्क भी निर्मित किये--

1. बड़ी पत्रिकाएं नियतकालिक और विशाल पाठक समुदाय तक पहुंचने में समर्थ होने के कारण साहित्य और साहित्यकार को जनता से जोड़ती हैं, जबकि लघु पत्रिकाएं अनियतकालिक और सीमित संख्या में छपने के कारण साहित्य को जनता से काटकर केवल लेखकों के मध्य सीमित रहती हैं ।
2. बड़ी पत्रिकाएं लेखकों को रचना का पारिश्रमिक देती हैं, जबकि लघु पत्रिकाएं मुफ्त में रचना छाप कर उनका शोषण करती हैं ।
3. बड़ी पत्रिकाएं उदार होती हैं और नये पुराने हर गुट के लेखकों की रचनाएं प्रकाशित करती हैं, जबकि लघु पत्रिकाएं अत्यधिक अनुदार कट्टर और गुटबाज होती हैं ।

इस तरह यह सिद्ध करने की चेष्टा की गयी कि लघु पत्रिकाओं से बड़ी पत्रिकाएं हर दृष्टि से श्रेष्ठ हैं और लेखकों के लिए उनमें ही छपना श्रेष्ठकर है लेकिन चूंकि व्यवसायिक पत्रिकाएं साहित्यिक कार्य नहीं कर सकतीं । यही कारण है कि बड़ी पत्रिकाओं के विरोध के बाद भी लघु पत्रिकाएं निकलती रहीं

और बड़ी पत्रिकाओं के संपादकों को भी अपने साहित्यिक अस्तित्व के लिए उसमें लिखने को विवश होना पड़ा ।

कुछ स्वार्थी वृत्ति के लोगो का मानना था कि छोटी पत्रिकाओं एवं बड़ी पत्रिकाओं में मात्र रूपगत अन्तर है । सन् 70 के आस-पास का तथाकथित लघु पत्रिका आन्दोलन बहुत दृढ़ तक विचारशून्य और दिशाहीन रहा । बहुत सी लघुपत्रिकाएं किसी वृहत् साहित्यिक अथवा सामाजिक उद्देश्य से प्रेरित होने के बजाय कुछ व्यक्तिगत स्वार्थों से प्रेरित होकर निकाली गयीं ।

छोटी और बड़ी पत्रिकाओं में केवल रूपगत फर्क होने की बातें बहुत से लेखकों पाठकों को सच लगती रहीं और एक लम्बे समय तक व्यवसायिकता विरोधी साहित्यिक पत्रिकाओं को लघु पत्रिका कहा जाता रहा और किसी को "लघु" शब्द पर आपत्ति नहीं हुयी । यह विचार नहीं किया गया कि साहित्यिक पत्रिकाओं को लघु पत्रिका कहना गलत और भ्रामक है । लघुता एक सापेक्ष शब्द है और यह किसी वस्तु के गुण, कार्य, उद्देश्य आदि को नहीं केवल उसके रूप की विशेषता को सूचित करता है । किसी पत्रिका को लघु कहते समय तथाकथित बड़ी पत्रिकाओं से उसकी तुलनीयता का भाव अनिवार्यतः निहित रहता है, जिससे ऐसा लगता है कि दोनों में केवल रूप या आकार का फर्क है, जबकि सच्चाई यह है कि व्यावसायिक और साहित्यिक पत्रिकाओं में फर्क सारतः रूप का नहीं, उनकी अंतर्वस्तु का होता है । सतही रूपवादी भ्रान्तियों का दूर करने में प्रस्तुत पत्रिकाओं की सूची से काफी मदद मिलेगी । पत्रिकाओं की सूची इस प्रकार है---

पत्रिकाएं	सम्पादक	प्रकाशन स्थान
1. अंकन	लक्ष्मीकांत सरस	मद्रास
2. अंततः	नरेन्द्र जैन, राजेन्द्र शर्मा	भोपाल
3. अन्तर	श्याम नारायण	दिल्ली
4. अंतराल	नचिकेता, रमेश रंजक	पटना

5. अंतर्गता	ओमप्रकाश, कृष्ण कमलेश	भोपाल
6. अकथ	मणि मधुकर	जयपुर
7. अकविता	जगदीश चतुर्वेदी	दिल्ली
8. अधर	मानिक वच्छावत	कलकत्ता
9. अगली कविता	ओमनंद	जयपुर
10. अग्रगामी	रामरतन नीरव	जयपुर
11. अचानक	शैलेन्द्र सुमन	रक्सौल
12. अणिमा	शरद देवड़ा	कलकत्ता
13. अतिर्मश	नरेन्द्र कोहली	दिल्ली
14. अतिरेक	सुरेश पाण्डेय	मथुरा
15. अथवा	सौमित्र मोहन	दिल्ली
16. अधुना	अचल राजपूत	दिल्ली
17. अनास्था	देवेन्द्र उपाध्याय	दिल्ली
18. अनाहूत	ललित शुक्ल	दिल्ली
19. अनुवाक	वचनदेव कुमार	राँची
20. अन्यथा	अलकनारायण	कलकत्ता
21. अन्यथा	शान्ति सुमन	मुजफ्फरपुर
22. अन्वेषणा	कृष्णचंद शास्त्री	उदयपुर
23. अपर्णा	रामनील उपाध्याय	कलकत्ता
24. अप्रत्याशित	अक्षय उपाध्याय	कलकत्ता
25. अप्रस्तुत	नवल	कलकत्ता
26. अब	शंकर, अभय साताराम	बिहार
27. अभिकल्प	शुभुवावन	रांची
28. अभिव्यंजना	मीरा सिंह	हावड़ा
29. अभिव्यक्ति	शिवराम	कोटा
30. अभिव्यक्ति	सुधीर तक्तेना	नागपुर

31. अभीक	बालेन्दु शेषर तिवारी	पटना
32. अमिता	कुमार मनोचा	लखनऊ
33. अपन	भूपाल सुद राममिलन मिश्र	दिल्ली
34. अर्थ	शरद शेषमणि पाण्डेय	लखनऊ
35. अर्थतत्ता	रामशरण जोशी	जयपुर
36. अर्थात्	अक्षय उपाध्याय	कलकत्ता
37. अलाव	यशोधन शुक्ल अल्पेश	हिडौन
38. अवकाश	सुरेश द्विवेदी	इलाहाबाद
39. अव्यक्त	रामप्रताप उपाध्याय	कलकत्ता
40. अवाम मित्र	अलीम	रतलाम
41. अस्ति	माना गुलाटी	दिल्ली
42. अस्वीकार	जयनारायण	कलकत्ता
43. अहसास	शरण श्रीवास्तव	जयपुर
44. आइना	राजेन्द्र प्रसाद सिंह	मुजफ्फरपुर
45. आकंठ	हरिशंकर अग्रवाल	पिपरिया
46. अकल्प	भोलानाथ यादव	बम्बई
47. आकृति	रणाधीर सिंह	पश्चिमी बंगाल
48. आद्यंत	कार्तिकनाथ, गौरीनाथ ठाकुर	परगना
49. आयाम	ओमानंद	चंडीगढ़
50. आमुष	कंचन कुमार	वाराणसी
51. आरम्भ	विनोद भारद्वाज	लखनऊ
52. आरती	रोशन उत्पल	इंदौर
53. आलोचना	नामवर सिंह	दिल्ली
54. आवाज	श्रवणकुमार	हवड़ा
55. आवेग	प्रसन्न ओझा	रतलाम
56. आवेश	रमश बक्षी अचला शर्मा	दिल्ली

57. अस्तित्व	गजेन्द्र तिवारी	मुजफ्फरपुर
58. आशीर्वाद	महेन्द्र कार्तिकेय	बम्बई
59. ओर	विजेन्द्र कुमार	भरतपुर
60. अनाहूत	लालट गशुक्ल	नई दिल्ली
61. आनेवाला कल	अशोक जोशी	कलकत्ता
62. अतएव	पुष्पोत्तम दास	लखनऊ
63. आधार शिला	दिनेश भट्ट	नैनीताल
64. अलाव	रामकुमार कृष्ण	नई दिल्ली
65. अंतर्दृष्टि	विनोददास	लखनऊ
66. अमिता	मुमार मनोचा	लखनऊ
67. इंदीवर	रघुनाथप्रसाद घोष	भागलपुर
68. इकाई	मनहर चौहान	दिल्ली
69. इबारात	रमेश शर्मा	रतलाम
70. इयता	नंद किशोर तिवारी	सासाराम
71. इसलिये	राजेश जोशी	भोपाल
72. इस बार	मधुकर सिंह	आरा
73. उत्कर्ष	गोपाल उपाध्याय	लखनऊ
74. उत्तरशती	खेन्द्र ठाकुर	पटना
75. उत्तरार्द्ध	सव्यसाची	मधुरा
76. उदाहरण	प्रतापनारायण वर्मा	कन्नौज
77. उदाहरण	रघुराज सिंह	रामपुर
78. उपलब्धि	वीरेंद्र त्रिपाठी	दिल्ली
79. उरेह	पांडेय कपिल	पटना
80. उत्तरगाथा	सव्यसाची	मधुरा
81. उद्धत	श्री राम शुक्ल	लखनऊ
82. अतुल्य	विक्रमकुमार	इन्दौर
83. अजुता	साधना गुप्त	दिल्ली

84. सकांत	श्यामनारायण वैजल	बरेली
85. आरांग उत्तंग	उपेन्द्रपंत प्रमोद त्रिवेदी	उज्जैन
86. कंक	निर्मल वर्मा	रतलाम
87. कलातर	अमर गास्वामी	मिर्जापुर
88. कथा	मार्कण्डेय	इलाहाबाद
89. कथा कहानी	मधुकर सिंह	आरा
90. कथाबोध	आलोक शैवाल	पटना
91. कथास्वर	अशोक टंडन	फैजाबाद
92. कथ्य	राजाप्रताप सिंह	पटना
93. कथाभारती	महेन्द्र कार्तिक्य	बम्बई
94. कथ्य परिवेश	केशव सिंहल	जयपुर
95. कलम	चंद्रवली सिंह, भैरवपताद मार्कण्डेय, चंद्रभूषण, हरीश अरुण माहेश्वरी	कलकत्ता
96. कलादीप	विष्णु सक्सेना	पिंजौर
97. कल्पना	बदरी विशाल पिती	हैदराबाद
98. कविता	जयसिंह, वीर सक्सेना, जुग मदिर तायल	अलवर
99. कविता	भागीरथ भार्गव	अलवर
100. कविता श्री	नलिनीकांत	बर्दवान
101. कहानीकार	कमलमुप्त	वाराणसी
102. काव्यायनी	अश्विनी कुमार द्विवेदी	लखनऊ
103. किधर	ललित कार्तिक्य	सोनीपत
104. क्रिया	रमेश वर्मा सरत	विलासपुर ईम. प्र. ४
105. केतन	सुरेश कितल्य	दिल्ली
106. कैवटस	राहीशांकर	हावड़ा
107. कैमूर	प्रियदर्शी राजेश	सासाराम

108. कोशा	विजय अमरेश	पटना
109. क्यों	मोहन श्रोतिय, स्वयं प्रकाश, व्यावर	राजस्थान
110. कृत संकल्प	वाल्टर तरुणा	पटना
111. कृत परिचय	ललित कुमार श्री	जबलपुर
112. कथन	रमेश उपाध्याय, रामकुमार शर्मा	दिल्ली
113. क्रान्ति धर्मा	स्वामी अग्निवेश	नई दिल्ली
114. कतार	ब्रजबिहारी, श्री नारायण समीर	धनवाद
115. कथ्य रूप	करेन्दु	इलाहाबाद
116. कथानक	सुनीत कौशिक	कानपुर
117. गंतव्य	अखिलेश्वर झा	दिल्ली
118. गवाह	भगवानदास वर्मा	औरंगाबाद
119. गल्प भारती	आ. सी. सिंह	कलकत्ता
120. गौधूलि	हृषिकेश श्रीवास्तव	पटना
121. गंगा	अधि कुमार मिश्र	नई दिल्ली
122. चिति	नंद क्षीणोर आचार्य	बीकानेर
123. चित्रतना	जयजी सिंह राठौर	पटना
124. चौराहा	महाप्रकाश	मुंगेर
125. जय भारती	लाल बहादुर सिंह	कलकत्ता
126. जन संसार	गीतेश शर्मा	कलकत्ता
127. जनसृजन	विनय श्रीकर	लखनऊ
128. जमीन	पवन कुमार मिश्र, प्रमोद त्रिवेदी	उज्जैन
129. जयपथ	अनंत कुमार सिंह	नया शिवगंज, भोजपुर

130. जहर	नवल किशोर	रांची
131. डिक्टेटर	भवर शर्मा	व्यावर राजस्थान
132. तटस्थ	कृष्ण बिहारी सहल	पिथारी
133. तत्काल	राजकुमार	लखीसराय
134. तनाव	हरिश्चंद्र अग्रवाल	पिपरिया
135. तरुणामन	नारायण देसाई कुमार प्रशांत	वाराणसी
136. तरुणोत्कर्ष	सतीश सक्सेना	जयपुर
137. तेवर	गोविंद द्विवेदी	सागर
138. तेवर	सुरेश शर्मा	दिल्ली
139. तैयारी	सूर्यकान्त	दिल्ली
140. तत्पर	प्रयास जोशी, वनाफर चन्द	भोपाल
141. दंष्ट्रा	अथर्व नारायण सूर्यदेव शास्त्री	कलकत्ता
142. दर्पण	श्याम श्रृंग	हवड़ा
143. दस्तावेज	अकुल्ल परिरहार	रानीखेत
144. दिशा	प्रभात सरस्जि	मुंगेर
145. दिशोबोध	दिविक रमेश	दिल्ली
146. दिशावाहक	रवेन्द्र कुमार कुलश्रृंग	लखनऊ
147. दीप	हंस अरोड़ा	कलकत्ता
148. दीपन	रमेश मालवीय	कटनी म. प्र.
149. दीप शिखा	कृष्ण अरोड़ा	दिल्ली
150. दीप शिखा	महावीर प्रसाद जैन	दिल्ली
151. दीर्घा	विनय नरेन्द्र वसिष्ठ	दिल्ली
152. दृष्टि	वीरेन्द्र प्रताप सिंह	मुजफ्फरपुर
153. धरातल	अयोध्यानाथ शांडिल्य	नालंदा
154. नयी कहानी	सतीश जमाली	इलाहाबाद
155. नई-धारा	उदयराज	पटना

156. नगरवधु	शिवकुमार दीक्षित	कानपुर
157. नया	मंजुला सिंह	पटना
158. नवागत	नीलम श्रीवास्तव	कोन्नगर
159. नागफनी	सुरेन्द्र तिवारी	कलकत्ता
160. निरुद्ध	जगदीश नलिन	मुजफ्फरपुर
161. निकेत	धर्मेन्द्र गुप्त	दिल्ली
162. निरन्तर	नरेश चन्द चतुर्वेदी	कानपुर
163. नीरा	बसंत वसु	जयपुर
164. नीलपत्र	के विक्रम	वाराणसी
165. नई रचना	मदन मोहन	गोरखपुर
166. निरुद्ध	गिरीश चन्द श्रीवास्तव	सुल्तानपुर
167. पक्ष	श्री राम तिवारी	पटना
168. पक्षधर	दूधनाथ सिंह	इलाहाबाद
169. प्रतज्ञर	नरेन्द्र घायल	पटना
170. पथिक	पवन राकेश	नैनीताल
171. पदक्षेप	भारत भारद्वाज	बिहार शारीफ
172. परितृप्त	चंद्रिका प्रसाद मिश्र	कलकत्ता
173. परिधि	होतीलाल भारद्वाज	
174. परिपत्र	कौशल किशोर	लखनऊ
175. परिभाषा	देवेन्द्र उपाध्याय	दिल्ली
176. परिवेश	काशीनाथ सिंह	वाराणसी
177. परिवेश	कुष्णा कुमार शर्मा	गाजियाबाद
178. पर्याय	वीरेन्द्र	पटना
179. पंचयती	प्रणव कुमार, वंद्योपाध्याय, अमृता भारती	दिल्ली

180. पञ्चती	प्रभात मित्तल	हापुड
181. पहल	ज्ञानरंजन, कमलाप्रसाद	जबलपुर
182. पुरुष	विजयकान्त	मुजफ्फरपुर
183. पूर्वाग्रह	अशोक वाजपेयी	भोपाल
184. प्रकट	विद्यासागर विद्याधंकार	दिल्ली
185. प्रक्रिया	सुधा श्रीवास्तव, शारदेन्दु शर्मा	अहमदाबाद
186. प्रगति	विजेन्द्र अनिल बगेन	शाहाबाद
187. प्रगतिशील समाज	अवधेश अमन	पटना
188. प्रचेता	सुरेन्द्र नाथ तिवारी	दिल्ली
189. प्रणेता	रामप्रताप नीरज	मुजफ्फरपुर
190. प्रतिनिधि	शिवादान	कलकत्ता
191. प्रतिबंध कविता	बलबीर सिंह, कौशल कुमारी	दिल्ली
192. प्रतिभा	मधदीप, महावीर प्रसाद जैन	दिल्ली
193. प्रतिमान	श्याम सुन्दर घोष	गौडंडा
194. प्रमिसान	हल्देश, राजेन्द्र कुमार महरोत्रा, श्याम किशोर सेठ	शाहजहापुर
195. प्रत्युत	अमरेन्द्र	सहस्राराम
196. प्रयास	राम जयसवाल	अजमेर
197. प्रारम्भ	भैरव प्रसाद गुप्त	इलाहाबाद
198. प्राप्ति	संतोष मिश्र	आरा
199. प्रालोचन	चयन चौहान	दिल्ली
200. प्रासंगिक	नेगेन्द्र चौरसिया	
201. पल प्रतिपल	देवा निर्मोही	पंचकूला हरियाणा
202. पारधि प्रभा	गौरीनाथ द्विवेदी	धनवादा

203. फिर	मोहन संपरा	नकोदर पंजाब
204. फिलहाल	वीर भारत तलवार	पटना
205. बातचीत	भरत महेश्वर	मुंगेर
206. बिंदु	नंद चतुर्वेदी	उदयपुर
207. बिंब	कृष्णारंजन	राजिम ईम. प्र. ४
208. बहस	ज्ञानप्रकाश	इलाहाबाद
209. बोध	परशुराम पंचदेव	कलकत्ता
210. भंगिमा	लालबहादुर वर्मा	गोरखपुर
211. भावबोध	विशेन पी०वी० सिंह	लुधियाना
212. मंच	भार्गवी कृष्णस्वामी	कानपुर
213. मंच	राकेश वत्स	अंबाला
214. मंतव्य	हनुमंत मनगटे	छिंदवाड़ा
215. मणिमय	रामव्यास पाण्डेय	कलकत्ता
216. मतांतर	आनंद प्रकाश, राजकुमार शर्मा, राजेश्वर पाल	दिल्ली
217. मधुकामिनी	जगदीश श्रीवास्तव	जबलपुर
218. मिथक	सुरेन्द्र मोहन	जालंधर
219. मिनीयुग	जगदीशचंद्र कश्यप	लुधियाना
220. मूल्यंकन	शुभनाथ चतुर्वेदी	लखनऊ
221. यंग आई	अशोक लव	दिल्ली
222. यथार्थ	स्वप्निल शर्मा	मनावर धार
223. यात्रा	अक्षय जैन, मोहन शर्मा	बम्बई
224. युग	केशव पाण्डेय	भिलाई
225. युद्ध परिबोध	आनन्द प्रकाश, रमेश उपाध्याय, राजकुमार शर्मा	दिल्ली

226. युग विचार	अरुणा श्रीवास्तव	गोरखपुर
227. प्रवमान	दिनश लखपाल	दिल्ली
228. युवराज	अशोक गुप्त	दिल्ली
229. युवा	उद्धांत	कानपुर
230. युवालेखन	कौशलकिशोर, विश्वमोहन, सुरेसनपुर	बलिया
231. रंगभारती	शरदनागर	लखनऊ
232. रंगसाधन	अनिलकुमार, मनोहर काशी	भोपाल
233. रंगायन	महेन्द्र भानावत	उदयपुर
234. रचना	एस मतिबल, के० विक्रम	वाराणसी
235. रचना	रामसेवक श्रीवास्तव, हरिहर सिंह	गोरखपुर
236. रचनाकार	जवाहर आजाद	फगवाड़ा
237. रमणी	जनक तयदेव	दिल्ली
238. राजश्री	सुशील कुमार अकेला	आगरा
239. राष्ट्रवाणी	गो० प० मेने	पूना
240. रंभावरा	स्वदेश भारती	कलकत्ता
241. रेखांकन	केशव पाण्डेय	भिलाई नगर
242. रेखाचित्र	नजर लुधियानवी	चंडी गढ़
243. लघुकथा	अश्विनी कुमार द्विवेदी	लखनऊ
244. लहर	प्रकाश जैन मनमोहिनी	अजमेर
245. लेकिन	विनय अशम	मुंगेर
246. लेखन	कपिल आर्य	कलकत्ता
247. लोक संपर्क	जगदीश माथुर कमल	जयपुर
248. लोक साहित्य	रामप्रसाद दाधीच	जोधपुर
249. वर्तमान	रामजी राय, उर्मिलिश, राजेन्द्र मंगज	इलाहाबाद
250. वर्तमान	गिरिजा शंकर अग्रवाल	रायपुर
251. वातायन	हरीश भादानी, पूनम दइया	बीकानेर
252. बानर	कृष्णाबिहारी सहल	जयपुर

253. वाम	चंद्रभूषण तिवारी	आरा
254. वाम-मित्र	जनेश्वर	रतलाम
255. विकल्प	शैलेश भाटियानी	इलाहाबाद
256. विकेन्द्र	शुभनाथ	हावड़ा
257. विग्रह	सतीश कुमार	दिल्ली
258. विचार	देवश ठाकुर	बंबई
259. विचार भूमि	ही रालाल जायसवाल	गोदिया महाराष्ट्र
260. विजन	राजनारायण सिंह	शाहाबाद
261. विधा	अनवर शिकारी	मुंगेर
262. विध्वंस	अनय	कलकत्ता
263. विनिमय	अनिल सिंह	पटना
264. विप्लव	केदारनाथ सिंह	पटना
265. विभक्ति	निर्मल मल्लिक	कलकत्ता
266. वीणा	श्यामसुन्दर व्यास	इंदौर
267. व्यंग्य	अरुण रंजन	पटना
268. व्यंग्यम्	रमेश शर्मा, निशिाकर श्री राम आयंगर महेश शुक्ल	जबलपुर
269. शताब्दी	ओंकार ठाकुर	जबलपुर
270. शताब्दी-संवाद	वेचन	भागलपुर
271. शब्द	चंदर चौधरी	लखनऊ
272. शब्द	विनोद के. किटी	बाराबंकी
273. शालपत्र	मनमोहन पाठक, वीर भारत तलवार	धनवाद
274. शाश्वत	धीरेन्द्र अस्थाना	देहरादून
275. शिलापत्र	राजेन्द्र कुमार	अलीगढ़

276. शिवम्	विनोद तिवारी	चंडीगढ़
277. शून्य	नावब सिंह राजपूत	
278. श्रमजीवी	शभूदत्त	हवड़ा
279. संकलन	छेदीलाल गुप्त	कलकत्ता
280. संकल्प	नरपत सिंह सोढ़ा	बीकानेर
281. संकेत	धीरेन्द्र नारायणसिंह	सहरसा
282. संज्ञा	ज्योतिष जानी	बड़ौदा
283. संज्ञा	देवी प्रसाद वर्मा	रायपुर
284. संग्रह	प्रहलाद दूबे	जमशेदपुर
285. संघर्ष	कुमार दीनानाथ सिंह	गोडडा
286. संघितना	महोप सिंह	दिल्ली
287. संप्रेषण	चन्द्रभानु भारद्वाज	जयपुर
288. संबंध	महेन्द्र मोहिल	भावनगर गुजरात
289. संबोधन	कमर मेवाड़ी कांकरोली	राजस्थान
290. संभावना	माधव मधुकर विश्वनाथ तिवारी	गोरखपुर
291. सतत	हरेकृष्ण हाजीपुर	वैशाली
292. सनीचर	ललित कुमार शर्मा	कलकत्ता
293. सप्तांगु	परमानन्द गुप्त	बेंगलौर
294. समकालीन	अजय	कलकत्ता
295. समकालीन कविता	अनिल श्रीवास्तव	इलाहाबाद
296. समग्र	महावीर प्रसाद जैन	दिल्ली
297. समझ	वसंत कुमार	पटना
298. समयान्तर	भरत सिंह	दिल्ली
299. समवेत	अजय सिद्धेश	कलकत्ता
300. समवेत	राजादूबे	सिकंदराबाद
301. समान्तरसाहित्य	ललित अवस्थी कामतानाथ	कानपुर

302. स्मारंभ	भैरव प्रसाद गुप्त	इलाहाबाद
303. समीक्षा	देवेन्द्र शर्मा गोपाल राय	पटना
304. सरोकार	प्रणयरंजन तिवारी	दिल्ली
305. सर्वनाम	विष्णु चन्द्र शर्मा	दिल्ली
306. सलीब	विनोद कुमार शंकरायन	रांची
307. सामयिक	विमल शर्मा श्री हर्ष	कलकत्ता
308. सामयिकी	भूपेन्द्र नारायण सिंह	बनारस
309. सार्थक	हरिमोहन नरेन्द्र कोहली, प्रेम जयभोजप	दिल्ली
310. साहित्यपीयूष	पुरुषोत्तम प्रशांत	हैदराबाद
311. साहित्य निर्झर	रमेश बत्तरा प्रचंड	चंडीगढ़
312. साक्षात्कार	शानी	भोपाल
313. सिंघु स्वर	कैलाश नाथ भारद्वाज	कमवाड़ा
314. सिताभा	किसलय वधोपाध्याय	गजियाबाद
315. सिर्फ	नन्दकिशोर नवल	पटना
316. सिलसिला	सुभार्षपंत	देहरादून
317. सुरभि-कल्ला	चमन सिंह कछावाड	अजमेर
318. सुहासिनी	सुधीर तक्सेना	दिल्ली
319. सोनाचंल	लालचंद	शाहडोल
320. हथियार	कालिकाप्रसाद सिंह	हवड़ा
321. हम	मंजुल उपाध्याय	जयपुर
322. हरकार	छंदराज	मुंगेर
323. हस्तक्षेम	अर्जुन राठौर	इंदौर
324. हस्ताक्षर	विभु कुमार	रायपुर
325. हास परिहास	हुल्लड	मुराबाबाद
326. हास्यम्	मुकुल उपाध्याय	बम्बई

327. हिरावल	शिव मंगल सिद्धान्तकार	दिल्ली
328. क्षत्रय	दिनकर सोनवलकर प्रसन्न ओझा	रतलाम
329. क्षेत्रज्ञ	सुशील शर्मा महेन्द्र जौहरी	जयपुर
330. त्रिज्या	ललित अग्रवाल	पिपरीया

xx

चतुर्थ अध्याय

"कथन" में प्रकाशित रचनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन

"कथन" रमेशा उपाध्याय एवं रामकुमार शर्मा द्वारा सम्पादित एक जनवादी पत्रिका है। जिसका प्रवेशांक जुलाई-अगस्त 1980 में दिल्ली से निकला। जैसे तो इस पत्रिका को कहानी पत्रिका के नाम से जाना जाता है परन्तु इसमें कहानी के अतिरिक्त कवितारें, परिचर्चा, बहस, समीक्षा, जरूरी किताब, मंच, कहानी की जमीन, दोस्त काल्प, हमारी विरासत, अन्यथा न लें, जो लिखा जा रहा है, परदे पर, विशिष्ट रचना, विशेष प्रतिक्रियाएँ आदि स्थाई स्तम्भ प्रकाशित होते रहे जिससे पत्रिका तो पूर्ण बनी ही सम्पादक के बहुआयामी प्रतिभा का परिचय भी हमें सहज ही मिल जाता है।

॥क॥ कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन :

कथन के उपलब्ध 20 अंकों में प्रकाशित कहानियों की पूर्ण संख्या 64 है। स्थानाभाव के कारण सभी कहानियों का विश्लेषण सम्भव नहीं अतः कुछ कहानियों को इसमें सम्मिलित किया जा रहा है- जैसे भीष्म साहनी की "सड़क पर", "जहूर बख्श", "संभल के बाबू", शोबेर जोशी की "बाढ़" रमेशा बत्तारा की "फाटक", "दूसरी मौत", "कत्ल की रात", सुरेशाकांटक की "एक बनिहार का आत्म निवेदन", "दूसरा कदम", "पपिया", मोहम्मद सुरेशा मनन की "तंबू", "जमीन", मैरव गुप्त की "टिड्डे", "हनुमान" रमेशा उपाध्याय की "प्रौढ़पाठशाला", "राष्ट्रीय राजमार्ग", स्वयं प्रकाश की "बस", "बर्डे", नमिता सिंह की "क्रांति", "तैलाब" इसराइल की "दर्द का तबादला", अब्दुल बिस्मिल्लाह की "पुष्पभोज", अशाफक की "रोशानी",

"लोक यमलोक", "उनकी राह", असगर बजाहत की "दिल्ली पहुँचना है", नीरज सिंह की "अपनों के बीच", सूरज पालीवाल की "टीका प्रधान", विष्णु प्रभाकर की "कितने जेबकतरे", डा.0 माहेश्वर की "धूर्त व्यापारी", हबीब कैफी की "जमीन", कुंदन सिंह परिहार की "अपने लोग", आदि हैं।

ये सभी कहानियाँ कहानी की उस जमीन पर खड़ी हैं जो प्रेमचन्द्र ने तैयार की थी, और जो प्रेमचन्द्रोत्तर एवं नयी कहानी के कहानीकारों की पकड़ से छूट गयी थी, वह जमीन है इतिहास की मुख्य धारा से जुड़कर समाज के बुनियादी अन्तर्विरोधों एवं संघर्षों को चित्रित करना।

जनवादी कथाकार ग्रामीण जीवन की चुनौतियों का सामना करने के प्रति अधिक सजग है। वह अमानवीय शोषण तंत्र के जटिल सम्बन्ध-सूत्रों को पहचानने लगा है और नयी उभरती हुयी संघर्ष चेतना को स्वर दे रहा है। भीष्म साहनी की "सड़क पर" भैरव प्रसाद गुप्त की "टिड्डे", रमेश उपाध्याय की "प्रौढ़पाठशाला" ग्रामीण जीवन तथा समाज के बुनियादी अन्तर्विरोधों के सन्दर्भ में तीव्रतर होते वर्ग संघर्ष को उठाती है। इन कहानियों का मेहनतकश पहले से अधिक सजग है और वह प्रतिगामी शक्तियों को चुनौती देने लगा है। इसका उदाहरण "टिड्डे" कहानी के किसान है जो न केवल अपने दुश्मनों को पहचानते हैं बल्कि उनके विरुद्ध खड़े होकर चुनौती भी देते हैं। जंगली नामक किसान कहता है—"हम उन्हें एक भी करमी के कल्ले पर हाथ न डालने देंगे। हम दिन रात करमी के जंगल की हिफाजत करेंगे। यह जंगल ही हमारी जान बचाये हुये है। जो टिड्डा किसी कल्ले पर दिबाई देगा। उसे पकड़कर उसकी टांग चीड़ देंगे।"

"प्रौढ़पाठशाला" का बिचौलिया बनवारी शहर से गांव आता है वह शासक वर्ग के विरुद्ध संगठित संघर्ष की उस चेतना के प्रसार को बन्द कराने का प्रयास करता है जो वर्ग और वर्ण की व्यवस्था में शोषित उत्पीड़ित लोगों में विकसित होने लगी है, लेकिन उन लोगों की एकता एवं संगठित स्वर व शक्ति के समक्ष बनवारी का उत्साह ठंडा पड़ जाता है और अन्त में

वह कहता है कि "इसका मतलब मैं बेकार ही आया।" इस कहानी में गाँवों में बढ़ती राजनीतिक चेतना को भी स्पष्टतः देखा जा सकता है।

भीष्म साहनी की कहानी "सड़क पर" हमारे सिद्धान्त और व्यवहार में जो, फर्क है उसको दिखाती है कि कितने समय से हम सर्व धर्म समानता की बात करते, परन्तु आज भी उसको व्यवहारिक रूप नहीं दे सके हैं। सार्वजनिक सम्पत्ति पर आज भी उस तथाकथित नीचों को समानता का अधिकार नहीं है, वे उस सार्वजनिक सम्पत्ति का उपयोग करते हैं जो भी उनके मस्तिष्क में एक डर सदैव बैठा रहता है कि वे औरों से निम्नकोटि के हैं।

जनवादी कहानीकारों को जनता की शक्ति में विश्वास है। वह यह मानते हैं कि जब तक हम किसान मजदूर अलग-अलग रहेंगें तब तक हम पर अत्याचार होते रहेंगें, परन्तु जब हम सब एक जुट होकर सामूहिक शक्ति के साथ सामने आयेगें, तो बड़ी से बड़ी शक्ति और समस्या को उखाड़ फेंकने में समर्थ हो सकते हैं। नमिता सिंह की कहानी "सैलाब" इसी शक्ति का संदेश देती है। सोमनाथ कहता है कि, कल उन तीनों सेठों की पिटाई हुई, फिर कोई ऐसा ही सेठ साहूकार मिलेगा। गाली देगा, धक्का देगा जगह नहीं देगा, तुम्हें गाँव का मेहनत मजदूरी करने वाला समझकर बेइज्जत करेगा, कब तक ऐसे मारपीट करते रहोगे। ---- अरे भाई कोई दूर की लम्बी लड़ाई लड़ते तो मजा आता। तुम अपने फैक्टरी के मजदूरों को अपने पीछे इकट्ठा क्यों नहीं करते।

इसी तरह भैरव प्रसाद गुप्त की कहानी "हनुमान" में सभी फैक्टरी मजदूर मालिक की बेईमानी, ज्यादाती, मनमानी दुराग्रह तथा अन्याय के विरुद्ध दृढ़ शक्ति से लड़ते हैं और उनकी शक्ति के सामने मालिक को सदैव मुँह की खानी पड़ती है। मालिक मजदूर यूनियन को तोड़ने की भी असफल कोशिश करता है।

सुरेशा कांटक की तीन कहानियाँ "एक बनिहार का आत्म निवेदन"

"दूसरा कदम", तथा मोहभंग में जनता की संगठन-शक्ति पर जोर दिया गया है। "दूसरा कदम" कहानी के मुसहर जाति के लोग सिर्फ इसलिए अपना अधिकार नहीं पाते क्योंकि उनमें एकता नहीं है। "मोहभंग" का मजदूर जब अपने मालिक की चाकरी छोड़कर मजदूर संघ में शामिल होता है तो वह न केवल स्वयं अपने अधिकार प्राप्त करता है बल्कि अपने समान कई लोगों के अधिकार की बात करता है। "एक बनिहार का आत्मनिवेदन" कहानी में जब तक गणाधीश राम अपने बापू केस्थान पर बनिहार बना रहता है, तब तक न तो उसे दो वक्त की रौटी मिलती न ही सम्मान की जिन्दगी बल्कि उसके जैसे लोगों की माँ बहन की इज्जत भी सुरक्षित नहीं रहती परन्तु जब वही लोग संगठित होकर सम्मिलित स्वर में संघर्ष करते हैं तो उन्हें उन अत्याचारों से काफी हद तक छुटकारा मिल जाता है।

अशाफाक की कहानी "रोशानी" में सफाई मजदूर अपने अधिकारों के लिए हड़ताल करते हैं। उस हड़ताल को दृढ़ एकता से सफल बनाने के लिए स्वयं सेवी संस्था के साथ लड़ना पड़ता है। इस हड़ताल की सफलता की कीमत उन्हें अपने एक साथी की जान से चुकानी पड़ती है।

असगर वजाहत की कहानी "दिल्ली पहुँचना है" में पूँजीवादी राजनीति की पतनशील संस्कृति का चित्रण किया गया है। प्रदर्शनकारी दिल्ली जाने के लिए किस एकता के साथ गलत काम करते हैं परन्तु उनकी एकता के सामने किसी को बोलने का साहस नहीं होता, थोड़ा साहस करके आये हुए पुलिस को भी वह मारपीट कर भगा देते हैं।

जनवादी कहानीकार कर्म में विश्वास करता है वह धर्म और स्वर्ग की आड़ में होने वाले शोषण का विरोध करता है। सुरेशा कांटक की "पपिया" इसी धार्मिक अन्धविश्वासों की आड़ में होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने वाली कहानी है। सुरेशा कांटक की कहानी "पपिया" का पात्र पपिया कहता है कि "अब मैं समझ गया हूँ और तुम भी जान लो यह

काम न तो देवी देवता करेंगे और न नेता करेंगे सब कुछ अपने आप करना होगा । " यहाँ पर पूर्णातः कर्म पर जोर दिया गया है तो एक स्थान पर यही पात्र धार्मिक अन्धविश्वासों के प्रति बोलता हुआ कहता है कि, "बाप रे बाप ! यह अनेति ! घर में भूजा दाना नहीं मागें बीबी यूँडा । खाने को दाने नहीं मिलते, स्थानी लड़कियाँ नीचे घूमती हैं । फूस की मड़ई एक बूँद पानी नहीं रोकती और पाँच सौ रुपये की सुअर चढ़ाते हैं । "

अशाफाक की कहानी "लोक यमलोक" में एक स्वप्न के माध्यम से समाज में व्याप्त व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है । सरूप सिंह यमलोक में हो रही भयानक शोषण की तैयारी को देखकर कहता है, "अब मेरे साथी भी उनकी चालाकी समझ गये हैं । वे चैन से नहीं बैठे होंगे । ऐसा जबदस्त आन्दोलन होगा कि तुम भी याद करोगे । इस पर यमराज गुस्से में कहता है "चोप्य साले", आन्दोलन ऐसे वक्त पर जबकि आम चुनाव नजदीक हो कितनी बेजा बात है । सभ्रांत वर्ग के शारीफ लोगों की छीछालेदर करने की छूट में किसी को नहीं दे सकता ठहर अभी तेरा पैसला करता हूँ । "

सरूप सिंह इस का उत्तर बड़े ही साहस और विश्वास से देता हुआ कहता है, "मैं समझ गया तुम्हारे यमलोक का कानून भी हमारी दुनिया के कानून जैसा ही है तुम भी उन्हीं को मारते हो जो पहले से मरे पड़े हैं लेकिन अपने दुनिया की एक खबर तुम्हें सुना हूँ अब मूर्खों में भी जान आ गयी है, मौत की नींद सोये हुये लोग जाग रहे हैं और तुम देखना अब वे तुम्हारे मारने से नहीं मरेगे । "

रमेशा बत्तरा की कहानी "फाटक" एवं "दूसरी मौत" नारी जीवन की समस्या को स्वर देती कहानियाँ हैं कि किस प्रकार अनमेल विवाह तथा दहेज दानव ने नारी जीवन को अभिशाप्त बना दिया है । "फाटक" कहानी का जमींदार मात्र वारिशा के लिए अपनी चौथी शादी करता है और वह भी उस लड़की से जिसकी माँ उसके कर्ज से बबी हुयी है तथा लड़की उम्र उससे कहीं

अधिक कम है पर न चाहते हुये भी अपनी बेटी की शादी वह उस जमींदार से कर देती है क्योंकि उसकी आज्ञा का उल्लंघन करके वह गाँव में नहीं रह सकती । परिणाम यह होता है कि वारिश होते ही लड़की अपने पुत्र को मार डालती है, वह अपने प्रिय पुत्र का बध करके उस शोषण को खत्म करना चाहती है जो वर्षों से समाज में होता आ रहा है । साथ ही दूसरी मौत में समाज में व्याप्त न्याय-व्यवस्था पर भी व्यंग्य है कि किस प्रकार कानून पैसे व बल वालों का साथ देता है ।

स्वयं प्रकाश की कहानी "बस" में अभिजात्य क्रान्तिकारिता पर व्यंग्य करते हुये उन लोगों पर चोट की गयी है, जो क्रान्ति और जनता से जुड़ने की बड़ी-बड़ी बातें तो करते हैं लेकिन उनके संस्कार ठीक इसके विपरीत होते हैं ।

नमिता सिंह की कहानी "क्रासिंग" स्थापित करती है कि साम्प्रदायिकता मनुष्य को अमानवीय और क्रूर बनाते हैं एक दुर्घटना चित्रण है, जिसमें सार्वजनिक हित के विरुद्ध कुछ व्यक्तियों के स्वार्थ की भूमिका, दंगे के बुनियादी आर्थिक कारणों तथा साम्प्रदायिकता पर व्यंग्य किया गया है । वहीं भीष्म साहनी की कहानी "जहूर बख्श" ऐसे व्यक्ति की कहानी है जिसका सर्वस्व उसके आंखों के सामने दंगे की भेंट चढ़ जाता है ।

जनवादी कहानीकार शोषक वर्ग के शोषण के विभिन्न तरीकों से भली-भाँति परिचित है वह जानता है कि ये किस प्रकार साधारण जन को धर्म, कर्म आदि अन्धविश्वासों में फँसाकर निरंतर इनका शोषण करना चाहते हैं । नीरज सिंह की कहानी "अपनों के बीच" में कहानीकार यह दिखाता है कि किस तरह थोड़े से पैसे उधार लेने पर वह व्यक्ति स्वयं तो आजीवन उसका काम करता है मरते वक्त अपने बेटे को मालिक की सेवा के लिए दे जाता है पर उसकी दृष्टि में उस मजदूर बेटे की कीमत अपने जानवरों से अधिक नहीं है वह बाढ़ के समय जब स्वयं शहर अपनी जान बचाने को जा रहे उस मजदूर बेटे को

अपने जानवरों की देखभाल के लिए छोड़ जाते हैं। कुंदन सिंह परिवहार की कहानी "अपने लोग" ऐसे नौकर की कहानी है जो मालिक की जी जान से सेवा करता है। वह अपने द्वारा मालिक के काम के लिए लाये गये आठ लड़कों को मालिक की आज्ञा से अनिच्छा से पीटने को विवश होता है इतनी स्वामी भक्ति के बावजूद उसे मालिक की कोठी छोड़नी पड़ती है।

हबीब कैफ़ी की कहानी "जमीन" एक ऐसे हाजी साहब की कहानी है जिसमें वे धर्म के नाम पर तो कभी बल से मम्मद भाई की जमीन पर अपना कब्जा कर ही लेते हैं, जैसा कि वह पहले भी अन्य लोगों के साथ कर चुके हैं, उनसे निपटने के लिए तथा छुटकारा पाने के लिए सभी एकजुट होकर हाजी साहब का विरोध करने की तैयारी करते हैं।

इसराइल की कहानी "दर्द का तबादला" एक फैक्टरी के हाजिरी बाबू के शोषण की कहानी है कि किस तरह ये बाबू मजदूरों से पैसे लेकर उनको काम देते हैं तथा कुछ से तो पैसा लेने पर भी काम नहीं देते। उनकी जब फैक्टरी की तरफ से तरक्की होने वाली होती है तो वह खुश होने के बजाय परेशान हो उठते हैं तथा उसे रूकवाने के लिए लेकर आफिस से लेकर हेडआफिस तक जाते हैं, पर तरक्की हो जाती है। वे इस तरक्की से यूँ परेशान हैं क्योंकि तरक्की हुई तलब बढ़ी पर आमदनी घट गयी।"

कथन की कहानियों में कुछ कहानियाँ चुनाव प्रक्रिया, पुलिस तथा मतदाताओं के हकीकत से भी हमें अवगत कराती है जैसे रमेश बत्तरा की "कत्ल की रात" तथा सूरज पालीवाल की "टीका प्रधान" कहानी है। इन कहानियों में व्यक्ति के स्वार्थी प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है कि व्यक्ति किस तरह अपने थोड़े से फायदे के लिए, दूसरों को बड़े से बड़ा नुकसान पहुँचाने में पीछे नहीं रहता।

भीष्म साहनी की कहानी "संभल के बाबू" में पीढ़ियों के अन्तराल को दिखाया गया है कि किस तरह स्मान परिस्थिति में दोनों पीढ़ी के नौकरों की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। एक यदि लाचार, बेवस तथा बेजबान

नट्यु है, तो दूसरा नट्यु शक्तिशाली, आत्मगौरव से युक्त वेबाक है जो अपने अधिकार लेना जानता है ।

अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानी "पुष्प भोज" ऐसे समृद्ध व्यक्ति की कहानी है जो धन के बल पर अपने को धर्म का ठेकेदार समझते हैं । पैसे के बल पर मन्दिर, मस्जिद का निर्माण करवाकर लोगों को भोजन खिला कर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं । यह कहानी धार्मिक पाखण्डों पर व्यंग्य करती है ।

रमेश उपाध्याय की कहानी "राष्ट्रीय राजमार्ग" एक संरचनागत प्रयोग है और यह प्रयोग अद्भुत है इसमें सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था का अत्यन्त जटिल और व्यापक आयाम हमारे सामने उद्घाटित होते हैं । खासी लम्बी कहानी में निरंतर उत्सुकता बनी रहती है । कमाल की बात तो यह है कि पूरी कहानी में एक पात्र बोल रहा है दूसरा पात्र भी सामने मौजूद है पर वह क्या कह रहा है यह पाठक की कल्पना पर छोड़ दिया गया है । यह कहानी समूचे देश की वास्तविकता, मौजूदा दौर के ज्वलंत प्रश्न से तो हमें अवगत कराती ही है । साथ ही आजादी से लेकर आपातकाल तक के पूरे दौर को यह कहानी अपने में समेटे हुये है जिससे रमेश उपाध्याय की क्षमता का पता चलता है ।

जनवादी कहानीकारों के सामने मुख्य प्रश्न कथ्य का ही है । शिल्प और भाषा तो दूसरे स्तर पर है । ये सभी कहानियाँ शिल्प और शैली की दृष्टि से प्रेमचन्द की परम्परा से प्रभावित प्रतीत होती है । शिल्प की दृष्टि से कहानियाँ सहज एवं सरल है तथा मन पर सीधा प्रभाव डालने वाली हैं । वर्णनात्मकता के कारण कई कहानियों का कथ्य प्रभावशाली न होकर बिखर गया है । इन सभी कहानियों के पात्र सर्वहारा वर्ग से लिए गये हैं तथा उनके जीवन की विषमता, शोषण, अत्याचार आदि के प्रति संघर्ष करते हैं। कहानियों की भाषा पात्रों के अनुकूल है ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इन अधिकांश कहानियों में शिल्पगत काव्यात्मकता की दृष्टि से नवीनता नहीं है लेकिन कुछ कहानियाँ रचनात्मक प्रौढ़ता की दृष्टि से उच्च कोटि की रचनाएं हैं ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जनवादी रचनाकार की वैचारिकता, स्पष्टता, दूरदृष्टि और सतत् सजगता एक मामूली घटना को केन्द्रीय वस्तु बनाकर चलने पर भी उस देश काल के आयाम में फैला देती है, अतः जो लोग यह आरोप लगाते हैं कि जनवादी कहानीकार विचार से कहानी बनाते हैं उन्हें ये कहानियाँ पढ़कर देखना चाहिए कि किस प्रकार इनमें विचार धारा एक रचनात्मक शक्ति के रूप में विद्यमान है ।

§४ "कथन" में प्रकाशित कविताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन :

"कथन" में प्रकाशित कुल कविताओं की संख्या 163 है। यहाँ सभी का विश्लेषण सम्भव नहीं, अतः कुछ कवियों की कविताओं का विश्लेषण यहाँ किया जा रहा है, जो इस प्रकार है—अश्वघोष, अक्षय उपाध्याय, अनिल कुमार गंगल, अरुण कमल और श्याम विमल, इल्वार रब्बी, उदय प्रकाश, पारसनाथ सिंह, चंद्रकांत देवताले, बद्रीनारायण, मनमोहन, रमेश रंजक, विजेन्द्र, विजय बहादुर सिंह, सोमदत्त, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, स्वप्निल श्रीवास्तव, शमशेर बहादुर सिंह, शील, शलभ श्रीराम सिंह, हरीश भादानी तथा त्रिलोचनशास्त्री।

सन् 1980 में हिन्दी कविता में एक नया दशक शुरू हुआ इस दशक में ऐसी अनेक रचनाएँ सामने आती हैं जिसमें मध्यवर्ग का अर्न्ध्व - मध्यवर्ग के प्रति आत्मालोचन का स्वर गूँजता है। जन-जीवन से जुड़ने की आकांक्षा और परिवेशबोध को व्यक्त करने वाली रचनाएँ भी हैं, विजेन्द्र, कुमारेंद्र, इल्वार रब्बी फैसले पर पहुँचे हुए कवि हैं, इनकी रचनाएँ संघर्ष की गवाही देती हैं।

इस दशक काराजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक रंगमंच उथल-पुथल भरा रहा है। इसमें देशव्यापी रेलवे हड़ताल है, गुजरात का छात्र आन्दोलन है, जे० पी० का "बिचड़ी विप्लव" है, "अनुशासन पर्व" की काली रात है, आम चुनाव हैं, तीन-तीन प्रधान मंत्रियों का उठना गिरना है, बढ़ती हुयी मंहगाई, बेकारी और भुखमरी है, साम्प्रदायिक और जातिगत दंगे, हरि-जनो, औरतों और अल्पसंख्यकों पर अत्याचारों का अनंत सिलसिला है। यद्यपि कविता सामाजिक और राजनीतिक घटनाचक्र का सीधा और स्थूल इतिहास नहीं है, परन्तु इस इतिहास की प्रतिध्वनि इस दशक की कविताओं में अवश्य सुनी जा सकती है। यह जनवादी काव्य का सौभाग्य है कि अनेक नये जनवादी कवियों के साथ नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल और शमशेर बहादुर जैसे पुराने प्रगतिशील कवि भी रचनात्मक संघर्ष का परिचय दे रहे हैं। जनवादी रचनात्मकता का यह दौर इतना वैविध्यपूर्ण, विविध छवियों एवं परस्पर भिन्न

स्वरों से भरपूर है, इस सम्पूर्ण परिवृश्य का आंकलन "कथन" में प्रकाशित कविताओं में देखा जा सकता है ।

अश्वघोष ने गीत, कविता और साखी के माध्यम से देश, समाज तथा जनसामान्य का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं । किस तरह मेहनत द्वारा अर्जित वस्तु पर भी मेहनतकश का अधिकार नहीं रहता—

दहशत में डूबी अपाहिज सी मां
घोड़ो को, फसल की नजर से देखती है
और घोड़े
माँ को नहीं फसल को देखते हैं
अपनी नजर से

सखियों के माध्यम से देश की वास्तविक स्थिति का चित्रण करते हुये लिखते हैं---

"अश्वघोष" इस देश के, क्या लिखे हालात ।
शोषणा, चोरी, तस्करी, लूटपाट उत्पात ।

प्रजातंत्र पर व्यंग्य करते हुये कहते हैं---

प्रजातंत्र के नाम पर, ये पायी सौगात ।
राजा को गद्दी मिली, परजा को फुटपाथ ।

अक्षय उपाध्याय शोषक वर्ग की विलासिता को चित्रित करते हुए लिखते हैं---

बच्चों की दुनिया में
आतंक बोलने के बाद

उनके सपनों की राख पोते
 भाँख मूदे
 दवा की दुनियाँ में घिरे
 भद्रजन
 अभी सोते हैं ।

“गिरफ्तारी” कविता में अध्व शोषित वर्ग की दयनीय स्थिति पर लिखते हैं—

उसने अपनी पलस्तर उखड़ी कोठरी की तंग दिवारों पर
 उदास होकर लिखा
 मैं भूखा हूँ मुझे रोटी चाहिए ।

इस बेबसी के बाद उसे यह सहसा होता है कि वह एक स्वतंत्र नागरिक है । उसके भी कुछ अधिकार हैं । यह उत्तेजना उसमें कुछ कर गुजरने की जिज्ञासा पैदा करती है, परन्तु शोषक वर्ग अपने लिए उसे खतरा समझकर बेहूदा नारा लिखने के जुर्म में गिरफ्तार करवा देता है ।

अनिल कुमार गंगल अपनी कविता “पुस्तकें शिक्षक हैं” में यह कहते हैं कि सम्पूर्ण समाज में व्याप्त शोषण का इतिहास पुस्तकों में मिल सकता है —

पुस्तकों में देखो
 जीवित बच्चों के जलते शव
 नाम और चेहरे
 शब्दों में झाँको
 पशुत्व में बदलता आदमी का इतिहास ।

अनिल अपनी कविता “एक बस्ती की कथा” में ऐसी बस्ती का चित्रण

करते हैं जहाँ से संभ्रात लोग गुजरना तक पसन्द नहीं करते, वह बस्ती है निम्नवर्गीय परिवारों की बस्ती । यहाँ के बच्चे स्कूल नहीं जाते । इस बस्ती के रहने वालों का न तो किताबों में कोई नाम है न समाज में । यहाँ के स्त्री, पुरुष व बच्चे सभी मानो सिर्फ काम करने के लिए बने हों । बड़े तो बड़े बच्चे भी अपनी बाल-सुलभ लीलाओं को भूल कर मायूस चेहरे तथा हसरत भरी निगाह लिए देखे जा सकते हैं, परन्तु कवि निराशा नहीं है —

देर सवेर

इस बस्ती को भूमिगत, जल की तरह
तल फोड़कर बाहर निकलना है ।

अरुण कमल और श्याम विमल अपनी कविता में मनुष्य के स्वार्थी तथा पशुत्व रूप को दिखाते हुये लिखते हैं—

सामने सड़क पर एक औरत की इज्जत जा रही है
और लोग अपने-अपने ओटों से देख रहे हैं चुपचाप
x x x x

बगल में एक आदमी का खून हो रहा है
और लोग अपने-अपने दरवाजे बन्द कर सुन रहे हैं चुपचाप
x x x x

पेड़ को पत्थर बनने में लगा है हजार वर्ष
आदमी देखते-देखते पत्थर बन रहा है ।

इब्बार रब्बी अपनी कविता "मेरा घर" के माध्यम से समाज के

निम्नवर्गीय परिवार का बड़ा मार्मिक चित्र खींचते हैं—

तन पर फटा क्लाउज नहीं है
बिना साबुन के धोकर
झुझालाकर अगीठी पर सुखाती हुयी माँ
एक घंटे बाद स्कूल जाने के लिए
फ्राक सुखाती हुयी बहन ।

किराये की कोठरी में अत्यन्त कम सामान के साथ रहता हुआ
यह परिवार अपने बेटे पर आशा लगाये हुए है —

गुस्ते में और प्यार में
लड़ाई में और मेल में
मेरा ही जिक्र होता है यहाँ ।

उदय प्रकाश की कविता "हाथ" समाज की राजनीतिक स्थिति को हमारे सामने रखती है कि किस प्रकार राजनीतिक पार्टियों के चुनावी वादे लम्बे चौड़े होते हैं, पर लक्ष्य सबका एक ही होता है सभी पार्टियाँ अपने थोड़े से फायदे के लिए बड़े से बड़ा अपराध, अमानवीय अनैतिक व असंवैधानिक कार्य करने से नहीं हिचकते । शक्ति आ जाने पर वही हाथ जो बोट के लिए लोगों के सामने फैले थे, उनका स्वरूप क्या हो जाता है इसका वर्णन करते हुये कवि कहता है —

यह हाथ नहीं
एक आत्मारहित
संवेदन शून्य

अमानुषिक जन्तु का
पंजा है ।

उमेश्वर दयाल अपनी कविता "मंजिल की दिशा में" हमारा ध्यान समाज में व्याप्त उस सच्चाई की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं जिसकी ओर से प्रायः लोग बेखबर हैं और वह सच्चाई है समाज के उच्च लोगों द्वारा आज भी जागरण की राह बन्द करने की सच्चाई क्योंकि उनके विचार में अगर लोग जाग जायेंगे तो वह हुकूमत किस पर करेंगे । वे लिखते हैं —

जब तक हमराही, हमदर्द की
खुलती नहीं है नींद
भविष्य के बारे में
रात बनाये रखने की साजिश
अभी जारी है ।

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह अपनी कविता "शाब्द गाथा" में यह कहते हैं कि शाब्द सदैव सक्रिय रहते हैं । यह शाब्द भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों के प्रति सजग है और चेतना का सिद्धा देते हैं --

तुम्हारे घरों में आग लगने पर
सबसे पहले ये चीखते हैं ।

ये शाब्द निःस्वार्थ भाव से दूसरों के लिए कार्य करते हैं--

ये रोटी नहीं खाते, मगर रोटी के लिए लड़ते हैं
घर में नहीं रहते, मगर घर के लिए जलते हैं ।

आज आवश्यकता इस बात की है कि लोग संगठित होकर सकाग्रता से कार्य करें क्योंकि एकता के बिना हम कुछ नहीं कर सकते --

इनकी पेशाकदमी बगैर
यू ही तनी रह जायेगी
और दिखाएँ तुम्हारे सामने नहीं खुल पाने के कारण
अंधेरे में खोयी रहेंगी ।

कुमारेन्द्र अपनी कविता "स्वप्न शिशु" के माध्यम से समाज में हुए क्रान्तिकारी परिवर्तन को दिखाते हैं --

कल तक जो तुम नहीं बोल सकते थे
आज तुम्हारी राख बोलने लगी है ।

जुगमंदिर तायल अपनी कविता "दूब" के माध्यम से यह संदेश देते हैं कि मनुष्य के पास चाहे कितने ही कम साधन क्यों न हों उसे हिम्मत नहीं हारनी चाहिए बल्कि बिरन्तर प्रयत्न करना चाहिए --

जितनी बार गिरूंगी
उतनी बार उठूंगीं झूमूंगीं
आँधी की ताकत जाँचूंगी

जुगमंदिर तायल की दूसरी कविता "प्रभु से कुछ सवाल" मार्क्सवाद से प्रभावित है । कवि प्रभु से सवाल करता है कि मैंने कभी तुम्हें देखा नहीं तो कैसे यकीन कर लूं कि तुम हो । यदि तुम हो और यह सृष्टि तुम्हारे लीला

का विस्तार है तो यहाँ इतनी भूख क्यों है । अरबों लोग भूख में पैदा होते हैं । भूख से लड़ते हुए जीते हैं और भूख में मर जाते हैं ।

हे प्रभु यदि तुमने ही सब कुछ रचा है तो क्या यह पीला प्रेत भी तुमने ही रचा है । यदि तुम्हारी इच्छा से सब कुछ होता है तो क्या घृणा कीकाली आग तुम्हारी इच्छा से जलती है ।

रमेशा रजंक की "तीन कविताएँ" अपने पूर्ववर्ती जनवादी कवियों की स्मृति में लिखी है कि वे किस तरह इस क्षेत्र में कार्यरत थे उनकी कविता का शीर्षक है "प्रेमचन्द्र के लिए", "मुक्तिबोध के लिए" तथा धूमिल के लिए" ।

नरेन्द्र जैन अपनी कविता "सफर" के माध्यम से कहते हैं कि सफर कठिन है पर इंसान को हिम्मत और लगन से अपना काम करके ही सच्ची खुशी मिलती है ।

खुशी होगी
चढ़ चुके होंगे जब हम
यह पहाड़
अभी सफर कितना कठिन है
कितने बोझिल है कदम

मनमोहन अपनी कविता "पिताओं का कोरस" में लिखते हैं कि निम्नवर्गीय मनुष्यों को जो समानता का अधिकार मिल रहा है उस पर तथा-कथित उच्च वर्ग की क्या हालत होती है —

और अछूत है कि छूत फैला दिये हैं
अरे छू छूकर तमाम चीजों को

x

x

x

वेदों का पढ़ना तो क्या
वेद लिखने भी लगे हैं ।

विजेन्द्र के तीन लोकगीत अछूत कन्या की कजरी, हरिजन महिला का गीत, अछूत कन्या की मल्हार कथन में प्रकाशित हुई है, जिसमें उन्होंने अछूत कन्या तथा हरिजन महिला के माध्यम से अल्पसंख्यक वर्ग के दुख को व्यक्त किया है ।

विजय बहादुर सिंह की कविता "राजा", पेड़, "आग और हवा" "तुम्हारे पाँव", "तुम्हारे दुख", "उसका सूरज" आदि कविताओं के माध्यम से जनसामान्य के दुख-सुख, आशा-आकांक्षा तथा संघर्ष को व्यक्त किया है-

तुम्हारे पाँव
लाजवाब है इनकी फुर्ती
ठहरते है तो बिजली-गाड़ी की तरह
उठते है तो करंट से ।

स्वप्निल श्रीवास्तव की कविता "तानाशाह का पाँव" के माध्यम से निम्नवर्ग की उस चेतना का परिचय देते हैं जो आज तक तानाशाहों के पावों में जूतों के सम्मान और वे उसका अपनी इच्छानुसार प्रयोग करते थे, परन्तु अब उसमें चेतना आ रही, तो वह तानाशाह अत्यन्त परेशान है क्योंकि --

राजा जूते को पहनकर
हवा में उड़ता था
जूते की नोक पर
रखता था अपना राज्य

"पौधे", माँ, "रामरतन भैया" बद्रीनारायण की तीन छोटी कविताएँ हैं जिसमें कवि ने माँ के माध्यम से क्रान्ति एवं पूँजीपतियों के ध्वंस की बात करता है —

कामना करती है
महल के दीवारों के टह जाने की
x x x
जुलूस में गुजरते
करमू को देख
जो खुशी से झूम उठती है ।

हरीश भदानी अपनी कविता "दबावों के खिलाफ" में सभी दृष्टि से समानता की बात करते हैं कि किस तरह समाज में सम्पूर्ण क्रान्ति होनी चाहिए तथा सभी को समाज में व्याप्त भेद-भाव को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए कृत संकल्प करना चाहिए --

उखाड़ लिखा करे जो
जात रंग की / देशा धर्म की
झंडो-वर्जनाओं की बदशासक तख्तियाँ
और कहने लगे
एक ही है तेरा और मेरा दर्द ।

शाल्भा श्री राम सिंह "नयी धरती का गीत" के माध्यम से देश के वर्तमान स्थिति को चित्रित करते हैं--

नयी धरती खून से तर है मगर फिर भी भली है ।
धर्म के प्रतिरोध के निर्माण के पथ पर चली है ।
x x x x x

नींद से उठकर चली आयी सुबह के नमन को
स्वीकारना कितना कठिन है ।

शशील की कविता "देशवासियों को चौकस रहना दिन होंगे फौलाद के" तथा "यह दाग है दागे आजादी" जनवादी गीत परम्परा की विशिष्ट रचनाएँ हैं । इसमें कवि ने सामाजिक राजनीतिक आदि सभी विषयों पर व्यापक रूप से लिखा है । राजनीति पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं --

तंसद में सदाचारों पे बहस, बाहर है दुराचारों की पहल
यह दाग है दागे आजादी, यह जख्म है जो नित तड़पाये ।

सामाजिक जीवन का चित्रण करते हुए लिखते हैं--

जाति धर्म लट रहें, पिट रहे जन, मंहगी की मार से,
हत्यारों को छूट मिली है दिल्ली के दरबार से,
आँखफोड़, कनफोड़ अपहरण, किस दर्शन की आड़ में
गाड़ रहे है अपने झंडे अपराधों की बाढ़ में
x x x x x

देशवासियों को चौकस रहना दिन होंगे फौलाद के ।

"एक काले बच्चे का खेल" शमशेर बहादुर सिंह की एक विशिष्ट नाट्यात्मक कविता है । जिसमें दो पात्र है, एक काला बच्चा और दूसरा गोरा मालिक । मालिक बच्चे के बराबर रहे जाने पर चीख उठता है, परन्तु काला अब डरता नहीं उसे पता है कि —

काले के बल पर

टिका है

सफेद

वह कहता है कि ----

तुम गोरा हम काला

तुम्हें अब नई

छोड़ सकता ।

इसके अतिरिक्त नागार्जुन तथा त्रिलोचन की भी कुछ कविताएं प्रकाशित हुयीं । नागार्जुन की कविताओं में "नदियाँ बदला ले ही लेंगी", "दलबदल बुजुर्ग", "लाख-लाख मन रूई निछावर", "वे हमें घेतावनी देने आये थे", "शाबाश महान अभिनेत्री", "बड़ी मछली.....छोटी मछली.....बड़ी म...", "तेरी खोपड़ी के अन्दर" तथा त्रिलोचन की दो सनिट "शक्ति यहाँ मिलती है", तथा तीन कविताएं हैं । इस तरह नये जनवादी कवियों के साथ पुराने प्रगतिशील कवि भी इस रचनात्मक संघर्ष में सक्रिय रहे हैं ।

इस तरह जनवादी लेखन पर आपातकाल का गहरा असर देखा जा सकता है । जनवादी कवियों का स्वर संयत किन्तु धारदार है । आपातकाल के दौरान जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का बुनियादी अधिकार भी छीन लिया गया, तो अनेक कवियों ने महसूस किया कि अभिव्यक्ति के पुराने माध्यम अपर्याप्त हो गये हैं । इसीलिए वे कविता के नये रूप विधान की खोज में संलग्न दिखलाई पड़ते हैं । नितांत निजी बिम्बों और उलझे हुये प्रतीक विधान से अलग जनवादी कवियों ने वस्तु जगत के सुपरिचित उपादानों के माध्यम से ही गहरे अर्थों की व्यंजना का प्रयास किया ।

जनवादी कविता में अगर भेड़िया, तेंदुआ, कुत्ते, शेर, चीता, सूअर यदि मौजूद है तो दूसरे तरफ चिड़िया, पेड़-पौधे, नदी-झरने, आसमान, बादल, हवा, पेड़ और पहाड़ है । इन वस्तुओं का प्रयोग काव्य का विषय बनाने की कोशिश भर नहीं है । चीजों की सहज वापसी भी नहीं अपितु चीजों को उसके सही नाम से पुकारने की कोशिश है । जीवन में सुन्दर और कुसुम, मानवीय और अमानवीय पक्ष कविता में सामंजस्य के साथ मौजूद है ।

§ग§ "कथन" में प्रकाशित परिचर्चाएँ :

"कथन" के सम्पादक ने समय-समय पर देश, समाज व साहित्य के ज्वलंत एवं गम्भीर विषयों पर परिचर्चाएँ आयोजित कराकर उसको कथन में प्रकाशित किया। जिसमें भाग लेने वाले अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से समस्या का समाधान दिया।

प्रवेशांक में ही "वर्तमान भारतीय समाज साहित्यकारों से क्या चाहता है।" विषय पर परिचर्चा प्रकाशित हुई इसमें सम्पादक की चिन्ता है कि सम-कालीन सन्दर्भों में आज के भारतीय साहित्यकारों से क्या अपेक्षाएँ की जाती हैं। साहित्यकार इन अपेक्षाओं को कहाँ तक पूरा कर पा रहे हैं। यदि नहीं कर पा रहे हैं तो इसका क्या कारण है और उन्हें क्या करना चाहिए। इन प्रश्नों को लेकर सम्पादक ने शिववर्मा, रामविलास शर्मा, शिवकुमार मिश्र, मैनेजर पाण्डेय, आनन्द प्रकाश, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह और कर्ण सिंह चौहान से बात की। शिव वर्मा यदि साहित्यकारों से समाज को शत्रुओं तथा मित्रों की पहचान कराने की अपेक्षा रखते हैं तो रामविलास शर्मा किसानों और मजदूरों का जीवन्त चित्रण चाहते हैं। जहाँ शिवकुमार मिश्र साहित्यकारों को समाज के साथ चलने को कहते हैं वहीं मैनेजर पाण्डेय समाज की आकांक्षाओं और संघर्षों को व्यक्त करने पर बल देते हैं। कर्णसिंह चौहान साहित्यकारों को साहित्य के दायरे से निकलने को कहते हैं तो मुरली मनोहर मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन में अपनी सक्रिय भूमिका के द्वारा साहित्यकार वर्तमान भारतीय समाज की आकांक्षाओं को पूरा कर सकता है।

दूसरी परिचर्चा का विषय है, "हमारे समाज के सांस्कृतिक विकास को कौन रोक रहा है।"

क्या हमारे समाज का सांस्कृतिक विकास सघम्य नहीं हो पा रहा है। यदि ऐसा है तो विकासावरोध के क्या कारण हैं। समाज में कौन सी शक्तियाँ इसके लिए जिम्मेदार हैं। क्या समाज में ऐसी भी शक्तियाँ

हैं जो संस्कृति की रक्षा और विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। यदि हैं तो कौन और उनके मार्ग में क्या कठिनाइयाँ हैं। आदि प्रश्नों को लेकर सम्पादक ने चार विभिन्न कार्यक्षेत्रों के लोगों का अनुभव हमारे सामने रखा है कि किन-किन रूपों में वे इस समस्या को अपने सामने पाते हैं तथा इसके क्या समाधान सुझाते हैं।

वी०टी० रणाविदेन § भारत की कम्युनिस्ट पार्टी § मार्क्सवादी § के नेता और सी०आई०टी०यू० के अध्यक्ष § का कहना है कि हमारे देश की अधिकांश जनता अशिक्षित और संस्कृति से अपरिचित है। अतः शिक्षा तथा जागरण के द्वारा ही यह कार्य सम्भव है।

वी०वी०कारंत § प्रख्यात रंगकर्मी, फिल्मकार, और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक § का मानना है कि संस्कृति वैयक्तिक नहीं सदा सामाजिक होती है। सांस्कृतिक मूल्य, मान्यताएँ धारणाएँ आदर्श आदि व्यक्तिगत नहीं सामाजिक आवश्यकताएँ हैं और एक नागरिक के रूप में ये सभी के पास होनी चाहिए। जहाँ तक सर्वहारा वर्ग या वामपंथी राजनीति की बात है उसके लिए संस्कृति विचार की बात नहीं जीवन व्यवहार या "वे आफ लाइफ" की बात है। सर्वहारा की जिस संस्कृति की बात की जा रही है वह अभी बनी नहीं है। जन संस्कृति की बात करने वाले लोग शहरी हैं जबकि जनता गाँवों में रहती है।

संस्कृति विकास को कौन रोक रहा है यह सबसे अच्छी तरह फिल्म जगत में देखा जा सकता है। गन्दी व घटिया फिल्में ठाट से चलने दी जाती हैं लेकिन अच्छी फिल्में नहीं बनने दी जाती। नाटक की स्थिति कुछ बेहतर है तो साधारण जनता से उसका सम्बन्ध नहीं।

निखिल चक्रवर्ती § प्रख्यात प्रगतिशील पत्रकार और अंग्रेजी साप्ताहिक "मेनस्ट्रीम" के सम्पादक § का मानना है कि हमारे समाज का शोषक शासक वर्ग संस्कृति के विकास को रोक रहा है। सांस्कृतिक विकास की जिम्मेदारी वामपंथी दलों की है दूसरों को इसकी परवाह नहीं।

भीष्म साहनी § प्रख्यात कथाकार और प्रगतिशील लेखक महासंघ के महासचिव § का कहना है जहाँ शिक्षित लोगों की इतनी कमी हो, उस देश का सांस्कृतिक विकास कैसे हो सकता है। सबसे बड़ी बाधा देश की निरक्षरता है, इसको दूर किये बिना व्यापक स्तर पर देश का सांस्कृतिक विकास नहीं हो सकता।

तीसरी परिचर्या का विषय है "भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन क्यों आवश्यक है।" सम्पादक ने इस विषय पर चार प्रमुख इतिहासकारों दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो० रामशरण शर्मा, जवाहरलाल नेहरू के विश्वविद्यालय के प्रो० विपिन चन्द्र अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रो० इरफान हवीब और विश्व विद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डा० सतीश चन्द्र से बातचीत की और उनके विचारों को हमारे सामने रखा। रामशरण वर्मा का कहना है कि इतिहास का पुनर्लेखन प्रगतिशील दृष्टिकोण से किया जाना आवश्यक है तो विपिन चन्द्र का मानना है कि ऐतिहासिक तथ्यों की पुनर्व्याख्या की जरूरत है। इरफान हवीब का कहना है कि इतिहास लेखन साम्प्रदायिक नहीं वैज्ञानिक होना चाहिए और प्रो० सतीश चन्द्र का मानना है कि इतिहास ऐसा हो जो सामाजिक परिवर्तन की वजह और दिशा स्पष्ट करे।

चौथी परिचर्या का विषय है "हिन्दी का समकालीन कथा साहित्य कहाँ पिछड़ा हुआ है।"

हिन्दी के समकालीन कथा-साहित्य को प्रमुख प्रवृत्तियाँ कौन सी हैं। क्या यह आरोप सही है कि कथा साहित्य अन्य विधाओं के मुकाबले गौण विधा है। क्या इसलिये कि यह लोकप्रिय विधा है। क्या यह सच है कि हिन्दी में कहानी कभी केन्द्रीय विधा थी और आज नहीं है। समकालीन कथा-साहित्य में यथार्थवाद का कौन सा स्वरूप उभर रहा है। उसकी रचना और आलोचना में आज क्या कठिनाइयाँ अथवा समस्याएँ हैं। इन प्रश्नों को लेकर सम्पादक ने भैरवप्रसाद गुप्त, सुरेन्द्र चौधरी, आनन्द प्रकाश, मधुशेखर तथा रमेश कुंतल मेघ से विचार विमर्श किया। इन सभी के विचार

क्रमशः इस प्रकार हैं साहित्य की जड़ता कहानी ही तोड़ सकती है ।

उपन्यास पिछड़ रहा है लेकिन कहानी आगे बढ़ रही है । सवाल है कथ्य को कितने ही रूपों में पूरी विविधता से प्रस्तुत करने का । मधुरेश का कहना है कि मुख्य चीज है सामाजिक संघर्ष की कलात्मक अभिव्यक्ति, तो रमेश मानते हैं कि हिन्दी कहानी को अच्छे आलोचक नहीं मिले इसलिए हिन्दी कथा साहित्य पिछड़ रहा है ।

पाचवीं परिचर्चा का विषय है, "भारत के कृषि सम्बन्धों को समझना क्यों जरूरी है ।" इस विषय पर सम्पादक ने श्री इन्द्रदीप सिन्हा § आर्थिक-राजनीतिक विषयों के प्रतिष्ठित लेखक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के केन्द्रीय सचिवालय के सदस्य और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व वाली अखिल भारतीय किसान सभा के अध्यक्ष हैं § श्री हरिकृष्णान सिंह सुरजीत § लोक लहर साप्ताहिक के सम्पादक, भारत की कम्युनिस्ट पार्टी § मार्क्सवादी § के पोलिटब्यूरो के सदस्य और भा०क०पा० के नेतृत्व वाली अखिल भारतीय किसान सभा के उपाध्यक्ष हैं § प्रो० पी०सी०जोशी § लैंड रिफॉर्म्स इन इण्डिया, भारतीय ग्राम : सांस्थानिक परिवर्तन और आर्थिक विकास तथा कल्चरल डाइमेंशंस आफ इकनामिक डेवलपमेंट, जैसी पुस्तकों के लेखक और दिल्ली के इंडस्ट्रीट्यूट आफ इकनामिक ग्रोथ के निदेशक § से बात की इन्द्रदीप का विचार है कि भारत में कृषि सम्बन्ध समाज और संस्कृति पर निर्णायक प्रभाव डालते हैं, इसलिए इसे समझना आवश्यक है । हरिकृष्णान सिंह सुरजीत के अनुसार कृषि सम्बन्धों को समझना इसलिए आवश्यक है कि पुराने कृषि सम्बन्धों को तोड़कर ही नये समाज की रचना हो सकती है । पी०सी०जोशी के अनुसार कृषि सम्बन्धों को समझना, भारतीय सामाजिक पथार्थ को समझने के लिए आवश्यक है ।

छठी परिचर्चा का विषय "हिन्दी-भाषी क्षेत्र में जनवादी आन्दोलन क्यों पिछड़ रहा है ।"

सम्पादक की समस्या है क्या आप यह मानते हैं कि भारत के कुछ

अन्य हिस्सों की तुलना में हिन्दी भाषी क्षेत्र में जनवादी आन्दोलन की स्थिति भिन्न है। यदि इस क्षेत्र में उसका अपेक्षित विकास नहीं हो पाया है तो इसके क्या कारण हैं। क्या समस्या है तथा उसके समाधान के लिए क्या किया जा सकता है। मेजर जयपाल सिंह के अनुसार हमारे सामने समस्या जनवादी आन्दोलन के असमान विकास की समस्या है। देश के कुछ राज्यों में जनवादी आन्दोलन आगे बढ़ रहा है लेकिन ज्यादातर राज्यों में बेहद पिछड़ा रहा है। इस असमान विकास का सबसे बड़ा खतरा यह है कि जहाँ-जहाँ आन्दोलन मजबूत है वहाँ यदि उसका दमन होता है तो अन्य क्षेत्रों से कोई मदद नहीं मिलती। दूसरा खतरा यह है कि हमारे राजनीतिक, कार्यनीतिक, संगठनात्मक और जन-आन्दोलनों से सम्बन्धित अखिल भारतीय फैसले गलत हो सकते हैं इन खतरों से निपटने का एक ही उपाय है कि जनवादी आन्दोलन के इस असमान विकास को खत्म किया जाय और आन्दोलन को देश व्यापी स्तर पर मजबूत बनाया जाय इसके लिये हिन्दी भाषी क्षेत्र पर विशेष रूप से ध्यान देना होगा। सुशील भट्टाचार्य इस समस्या का समाधान देते हुए कहते हैं हमें जनवादी आन्दोलन को आगे बढ़ाने और उसके प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करने के साथ-साथ उसमें शामिल लोगों के वैचारिक स्तर को भी ऊपर उठाना होगा। इसके लिए हमें ट्रेड यूनियनों, किसानों, छात्रों, नौजवानों और महिलाओं के संगठनों में राजनीतिक शिक्षा के लिए नियमित स्कूल चलाने की व्यवस्था करनी होगी और संगठनात्मक स्तर पर इस बात को ध्यान में रखना होगा कि हम कोई स्थानीय या क्षेत्रीय कार्य नहीं बल्कि सम्पूर्ण देश से सम्बन्धित एक वृहद कार्य कर रहे हैं।

राजीव तन्तेना का मानना है कि हिन्दी भाषी क्षेत्र में जनवादी आन्दोलन के पिछड़ने का कारण है कि बाहर से ज्यादा आन्दोलन भीतर के हैं। सव्यसाची का कहना है कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में जन आन्दोलन कमजोर है पर निरन्तर प्रयास से स्थिति निराशाजनक नहीं है।

सातवीं परिचर्चा का विषय है, "अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से पचास

अरब रुपये के कर्ज का मतलब है। "परिचर्या में भाग लेने वालों में सर्वश्री अशोक मिश्र, रणजीत साऊ, दीपक नैयर, प्रभात पटनायक, अमित भादुड़ी, अमित कुमार बागची, असीमदास गुप्त हैं। अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष के बारे में बताते हुए सम्पादन का लेखन है कि अन्तराष्ट्रीय मुद्राकोष की स्थापना 1944 में अमरीका के न्यू हैम्पशायर पहाड़ों में स्थित ब्रेटन वुड्स नामक स्थान पर आयोजित चवालीस राष्ट्रों के "संयुक्त राष्ट्र मुद्रा और वित्त सम्मेलन" में इसकी सहोदर संस्था विश्व बैंक के साथ-साथ हुयी थी। कहने को अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष संयुक्त राष्ट्र की एक विशेष एजेंसी है, लेकिन वास्तविक रूप में यह एक स्वतंत्र संस्था है। समाजवादी देश इसके सदस्य नहीं हैं और इसमें संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा की तरह "एक राष्ट्र के एक बोट" का सिद्धान्त नहीं चलता। इस कोष में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को अपनी मुद्रा का एक कोटा रखना पड़ता है और उस कोटे के अनुपात में ही किसी राष्ट्र का नियन्त्रण इस पर कम या ज्यादा होता है। सदस्य देश अपना एक एक्जीक्यूटिव डाइरेक्टर नियुक्त कर सकते हैं, लेकिन 1944 में ही, जब से मैनेजिंग डाइरेक्टर का पद बना है मैनेजिंग डाइरेक्टर हमेशा एक अमरीकी ही रहता आया है और अमरीका को ही इसमें वीटों का अधिकार प्राप्त है। अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष का कार्यालय भी अमरीका में स्थित है।..... प्रत्येक सदस्य देश कोष में से एक वर्ष के लिए अपने कोटे का 70 प्रतिशत बिना किसी शर्त के निकाल सकता है और दो वर्षों के लिए सामान्य नियमों पर राजी होकर कोटे का 120 प्रतिशत तक ले सकता है, लेकिन एक विशेष योजना के अन्तर्गत लम्बे समय की अदायगी वाले काफी बड़े-बड़े कर्ज भी लिये जा सकते हैं। यह विस्तारित वित्तीय सुविधा योजना कहलाती है। इस सुविधा के अन्तर्गत कर्ज देते समय अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष जो शर्तें लागू करता है, वे किसी भी राष्ट्र के लिए अपमानजनक और उसकी आर्थिक संप्रभुता के लिए खतरनाक हो सकती हैं। यही कारण है कि अधिकांश राष्ट्र इस सुविधा से बचते हैं। मगर भारत सरकार ने वे शर्तें मान ली हैं और अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष से 9 नवम्बर 1981 को भारत

सरकार ने सबसे बड़ा कर्ज लिया। इसका पता भारतीय जनता को तब चला जब दक्षिण भारत से निकलने वाले "हिन्दू" नामक अखबार के संवाददाता एन० राम को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के एक कार्यकारी निदेशक ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष कार्यालय द्वारा तैयार किये गये इस कर्ज से सम्बन्धित दस्तावेज की प्रति यह सोचकर दी कि इतने बड़े और भारी मतौदे पर किसी भी देश की संसद उसके अखबारों और जनता को पूरी तरह विचार विमर्श करने का अधिकार होना चाहिए।" एन० राम ने सम्बन्धित तथ्य 16, 18, 19, 20 और 21 अक्टूबर 1981 के "हिन्दू" में प्रकाशित कराये और पश्चिम बंगाल सरकार ने "हिन्दू" में प्रकाशित इन तथ्यों के साथ साथ देश के कुछ जाने-माने अर्थशास्त्रियों के विचार नम्बर 1981 में "दि०आई०एम०एफ०लोन : फैक्ट्स एण्ड इश्यूज" नामक पुस्तक में प्रकाशित किये। इन सभी अर्थशास्त्रियों के विचारों का सरल, संक्षिप्त भावानुवाद इसलिए सम्पादक ने प्रस्तुत किया है कि अर्थशास्त्रियों को ही नहीं देश के प्रत्येक नागरिक को इस पर विचार करना चाहिए। कारण यह है कि पूँजीवादी विकास के दिवालिया रास्ते पर चल रही भारत सरकार के इस कदम से जमींदारों, इजारेदारों, बड़े व्यापारियों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को तो फायदा होगा लेकिन मजदूरों, किसानों नौकरी पेशा मध्यवर्गीय लोगों, छोटे उद्योगपतियों और छोटे व्यापारियों के सिर पर मौजूदा आर्थिक संकट का सारा बोझ आ पड़ेगा।

आठवीं परिचर्चा का विषय है, "समकालीन भारतीय समाज में वर्णों और जातियों का वर्गों से क्या सम्बन्ध है।"

इस विषय पर सम्पादक का प्रश्न है-वर्ण क्या है। जाति क्या है। आधुनिक वर्गों से इसका क्या सम्बन्ध है। इन्हें वर्ग संघर्ष से कैसे जोड़कर देखा जाना चाहिए। जातिवाद की समस्या क्या है और वह कैसे हल हो सकती है। कुछ लोग वर्ग संघर्ष के साथ वर्ण संघर्ष की जो बात करते हैं, वह क्या है। जातिवाद के विरुद्ध चले सामाजिक आन्दोलनों और सरकारी उपायों के बावजूद आजादी के इतने वर्षों बाद भी यह समस्या क्यों

बनी हुयी है। क्यों उत्तरोत्तर भयानक ही होती जा रही है और इसका हल क्या है। इन प्रश्नों के ऐतिहासिक सन्दर्भ को स्पष्ट करने के लिए प्रो० राम शारणा शर्मा से, सामाजिक सन्दर्भ को स्पष्ट करने के लिए प्रो० पी०सी०जोशी से और राजनीतिक सन्दर्भ को स्पष्ट करने के लिए कामरेड बी०टी०रणाविदे से विचार विमर्श किया रामशारणा शर्मा के अनुसार, वर्णों, जातियों और वर्गों का पारस्परिक संबंध समय विशेष के सामाजिक स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में ही समझा जा सकता है। अतीत में यह संबंध कुछ और था आज कुछ और है। जातिवाद के खिलाफ लड़ना आज बहुत जरूरी है, हालाँकि यह काम आसान नहीं है क्योंकि लोगों के विचार को बदलने में बहुत देर लगती है, फिर भी यह काम हमें करना होगा। एक तरफ वैचारिक सैद्धान्तिक धरातल पर और दूसरी ओर सामाजिक परिवर्तन के धरातल पर यह काम हमें साथ-साथ करना होगा।

पी०सी०जोशी के अनुसार, वर्ग एक खुली व्यवस्था है जिसमें नीचे से ऊपर की ओर और ऊपर से नीचे की ओर गति हो सकती है लेकिन जाति का जो शास्त्रीय विधान है उसमें यह सुविधा नहीं। यह विधान अस्मानता को स्थाई बनाता है और समाज में जो व्यक्ति जहाँ है, उसे वहीं रखने की चेष्टा करता है। जातिवाद को तोड़ने के लिए जातिवाद के नाम पर होने वाले अत्याचारों शोषण आदि का दमन करना होगा।

बी०टी०रणाविदे का मानना है कि जाति जन्म से निश्चित होती जबकि वर्ग श्रम-विभाजन के आधार पर निर्धारित कार्यों से निश्चित होता है। पुरानी धार्मिक रूढ़ियाँ टूट रही हैं और आज बहुत से ब्राह्मण क्षत्रिय नौकरी और मजदूरी करते मिल जायेंगे तथा नीची जाति के लोग भी अपने पुश्तैनी धर्म को छोड़कर व्यापार और उत्पादन करके शोषक वर्ग में शामिल होते देखे जा सकते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि जाति और वर्ग में संबंध तो है मगर यह संबंध टूट रहा है।

नवीं, परिचर्चा का विषय है, "दहेज विरोधी संघर्ष का जनवादी परिप्रेक्ष्य क्या है।"

दहेज के लिए स्त्रियों को जलाकर मार दिये जाने के क्रूर कुकृत्यों के विरुद्ध अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति की महिलाएं क्या कर रही हैं। यह जानने के लिए सम्पादक ने इस संगठन की दिल्ली राज्य शाखा की अध्यक्ष सुश्री अशोक लता जैन महासचिव श्रीमती रीता करात और सहसचिव श्रीमती इन्दु अग्निहोत्री से बात की।

रीता करात के अनुसार हमारी जनवादी महिला समिति इस बात पर जोर देती है कि भारतीय महिलाओं का उत्पीड़न समूची भारतीय जनता के शोषण का एक अभिन्न हिस्सा है। अतः इन समस्याओं को अन्य तमाम समस्याओं से जोड़कर देखना चाहिए। अशोकलता जैन का कहना है कि दहेज के लिए स्त्रियां जलायी जा रही हैं, यह एक तथ्य है लेकिन इस तथ्य के प्रति जैसी चिन्ता और चेतना हमारे समाज की होनी चाहिए वह नहीं है, यही कारण है हत्या करने वालों के हौसले बढ़ते जाते हैं। लोगों की सामाजिक जड़ता को तोड़ना जरूरी है। लोगों में यह चेतना पैदा करना जरूरी है कि ये हत्यारे किसी का निजी मामला नहीं बल्कि सामाजिक अपराध है और इन्हें रोकने के लिए आम आदमी का सक्रिय हस्ताक्षर आवश्यक है।

इन्दु अग्निहोत्री के अनुसार दहेज के कारण हो या किसी और कारण से, स्त्रियों पर अत्याचार होते रहे हैं उनका मूल कारण है हमारा समाज शोषण और अस्मानता पर आधारित समाज है। इस समाज के जनता के मेहनतकश हिस्सों को सभी तरह के अधिकारों से वंचित रखने की लम्बी परम्परा रही है। इसीलिए स्त्रियों और अछूतों को हमारे यहाँ बहुत समय तक मनुष्य ही नहीं माना गया। हमेशा उनसे गुलामों की तरह काम लिया गया और हर तरह से उनका शोषण किया गया। इस तरह की घटनाओं के पीछे आर्थिक शोषण और सामाजिक भेद भाव एक अकाद्य सत्य है अतः इसको दूर करके ही इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है।

अंतिम परिचर्चा का विषय है "सांप्रदायिकता की समस्या का समाधान आखिर क्या है।"

हमारे देश में धर्म, जाति क्षेत्र आदि के आधार पर संगठित साम्प्रदायिकता की शक्तियों काफी समय से लगातार सक्रिय है और आम जनता को आपस में लड़ाकर वे न केवल जनवादी आन्दोलन को कमजोर बनाती हैं बल्कि देश की एकता को नष्ट करके उसे विभाजित और विघटित करने की कोशिश करती हैं ।

असम, पंजाब, कश्मीर आदि में आज जो कुछ हो रहा है सबके सामने है । स्वधीनता आन्दोलन के समय से आज तक साम्प्रदायिकता की समस्या हल होने के बजाय उत्तरोत्तर उग्र तर और भयंकर होती गयी है । इसका समाधान तलाश करने के लिए सम्पादक ने विष्णु प्रभाकर {एक साहित्यकार} श्री पी०सी०जोशी {एक समाजशास्त्री} श्री ए०रहमान {एक वैज्ञानिक} से बात की ।

विष्णु प्रभाकर के अनुसार साम्प्रदायिकता का एक रूप हमेशा धार्मिक रहा है और दूसरा आर्थिक, इसके साथ ही राजनीतिक कारण भी जुड़े रहते हैं । इसके समाधान के लिए लोगों की मानसिकता को बदलना होगा । हम लेखक, कलाकार, बुद्धिजीवी लोगों को परिस्थिति को समझते हुये इसके खिलाफ विद्रोह करना चाहिए, अपने छोटे-छोटे फायदे के लिए समझौता नहीं । हम लोगों के संगठित प्रयत्न से काफी काम हो सकता है । हम इतना तो कर ही सकते हैं कि साहित्य में और विशेष रूप से पाठ्यपुस्तकों में, जो साम्प्रदायिकता भरी पड़ी है, उसको निकालकर उसकी जगह वैज्ञानिकता लायें ।

पी०सी०जोशी का मानना है कि साम्प्रदायिकता की समस्या को हल करने के लिए एक तरफ तो आर्थिक विकास पर ध्यान देना जरूरी है जिसमें हमें यह देखना होगा कि लोगों का पिछड़ापन तेजी से दूर हो और वे शोषण के शिकार न होकर उस विकास के कर्त्ता और भोक्ता बने । दूसरी तरफ सामाजिक परिवर्तन पर ध्यान देना जरूरी है, जिसमें यह देखना होगा कि लोगों की पुरानी मान्यताएँ तेजी से बदलें और उनमें आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुकूल नयी सामाजिक चेतना पैदा हो । इसमें बुद्धिजीवियों,

शिक्षकों, लेखकों, कलाकारों आदि का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है ।

सोरहमान का विचार है कि साम्प्रदायिकता को दूर करने के दो तरीके हैं एक तो आत्मनिर्भरता पर जोर दिया जाय और देशी विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का विकास करके तेजी से देश का आर्थिक विकास किया जाय, जिससे आर्थिक पिछड़ापन दूर हो । दूसरा यह है कि जनता में जो तरह-तरह के अज्ञान और अंधविश्वास फैले हुये हैं उनको दूर किया जाय, इसके लिए जरूरी है कि परिवर्तन की शक्तियाँ इस समस्या को ठीक-ठीक समझें और एकजुट होकर कुछ ठोस काम करें ।

इस तरह कहा जा सकता है कि "कथन" के सम्पादक ने बड़े ही सार्थक विषयों पर, उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा जोरदार परिचर्चाएँ आयोजित कराई और उसको विद्वतापूर्वक "कथन" में प्रकाशित किया ।

॥घ॥ "कथन" में प्रकाशित बहस का विश्लेषणात्मक अध्ययन :

आधुनिक युग में कुछ तो रचना की सर्जनात्मक जरूरत के दबावों में और कुछ नये प्रयोगों के आग्रहों के तहत विधाओं की परम्परागत सीमाएँ टूटी हैं। विधाओं के इस संक्रमण के दौर में, आलोचना के क्षेत्र में भी एक ऐसी अराजक वृत्ति पनपी है जो कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक की निजी स्वरूपगत विशिष्टताओं तथा उनकी रचना प्रक्रिया की भिन्नताओं की उपेक्षा कर सब पर एक से प्रतिमान लागू कर एक सामान्य सामाजिक सत्य को पाकर आत्मतुष्टि का अनुभव करती रही है। उस सामाजिक सत्य को पाने और व्यक्त करने के लिए की गयी रचनाकार की संघर्ष-यात्रा की विशिष्टता को बिल्कुल नजरअंदाज किया जाता रहा। यहाँ तक कि कविता पर चित्रकला और मूर्तिकला तथा कथा पर संगीत के प्रतिमान लागू करने के चमत्कारी प्रयास भी देखने में आये। आलोचना की इस अराजकता को ध्यान में रखते हुए डा० मैनेजर पाण्डेय ने सामाजिक सत्य और रचना माध्यम" तथा उनके आपसी रिश्तों को लेकर अनेक महत्वपूर्ण सवाल इस लेख में उठाये हैं। कलात्मक व्यवहार के माध्यम की विशिष्ट भूमिका क्या है। माध्यमों के अपने स्वरूप का प्रभाव और परिणाम विशिष्ट कलात्मक व्यवहार पर क्या है। अपनी रचना प्रक्रिया के दौरान सामाजिक सत्य को पाने और व्यक्त करने के लिए की गयी रचनाकार की संघर्ष यात्रा को विशिष्टता की पहचान कैसे सम्भव है। रचना की ऐतिहासिकता और सर्जक की विचार धारा का रूप से क्या सम्बन्ध है। रचना की संरचना का अपने समय की सामाजिक संरचना से क्या संबंध है। एक ही सामाजिक सत्य कला रूपों की भिन्नताओं का कारण भिन्न रूपों में कैसे प्रकट होता है। आदि प्रश्नों पर विस्तारपूर्वक विचार किया है तथा इस बहस को आगे बढ़ाते हुए शमशेर बहादुर सिंह ने इन प्रश्नों को अपनी जगह से उत्तरित किया।

"कथन" की दूसरी बहस का विषय, है, "साहित्य और राजनीति के

अन्तः संबंध" । इस विषय को लेकर अनेक सवाल जनवादी और गैर जनवादी दोनों तरह के लेखकों के बीच उठते रहे हैं और लगातार लम्बी बहसें चली हैं । मगर इससे न तो इस बहस की जरूरत खत्म हुई है न इसकी अहमियत में कमी आयी है । सच तो यह है कि आज की परिस्थितियों में इन सवालों पर सही बहस की जरूरत और भी ज्यादा महसूस हो रही है । सवाल मुख्यतः ये हैं--- अपने कार्यक्षेत्रों की विशिष्ट प्रकृतियों और सीमाओं के चलते राजनीति और संस्कृति के बीच सही रिश्ता क्या हो सकता है । राजनीतिक कार्यकर्ता और संस्कृति के क्षेत्र में कार्य करने वाले लोगों में भिन्नताएँ ही हैं या कोई समानता भी है । यदि है तो क्या । और राजनीतिक दल तथा सांस्कृतिक मंच सामाजिक परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया में किस तरह एक-दूसरे से उपयोगी रिश्तों से जुड़ सकते हैं । ये सवाल प्रख्यात मार्क्सवादी चिंतक तथा भारत की कम्युनिस्ट पार्टी {मार्क्सवादी} के महासचिव कामरेड ई० एम० एस० नम्बूदरीपाद के सामने सम्पादक ने रखा और इसके उत्तर में जो संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित लेख उन्होंने "कथन" के लिए विशेष रूप से लिखा है उसे इस बहस में प्रस्तुत किया गया है । नम्बूदरीपाद के अनुसार, "राजनीतिक कार्यकर्ता और सांस्कृतिक कार्यकर्ता दो भिन्न हस्तियाँ होती हैं जिसके द्वारा दो भिन्न प्रकार के विशिष्ट कार्य संपादित किये जाते हैं । दोनों ही प्रतिक्रियावादी अथवा प्रगतिशील भूमिका अदा कर सकते हैं, क्योंकि वे या तो मौजूदा शोषणकारी तथा दमनकारी समाज व्यवस्था को संगठित करने और बनाये रखने में सहायक होते हैं या उन ताकतों को मजबूत बनाते हैं जो दमनकारी समाज व्यवस्था का प्रतिरोध कर रही है और उसकी जगह एक अधिक न्यायपूर्ण तथा सामाजिक समाज व्यवस्था को लाने की कोशिश कर रही है ।

इस "साहित्य और राजनीति के अन्तः सम्बन्ध" बहस को ओमप्रकाश ग्रेवाल ने आगे बढ़ाते हुये लिखा है कि जहाँ तक दोनों के अन्तः सम्बन्ध की बात है, दोनों में अनिवार्य सम्बन्ध यह है कि वर्ग विभक्त समाज में साहित्य क्योंकि वर्ग संघर्ष के निरपेक्ष नहीं रह सकता, इसलिए उसमें व्यक्त विचार, भावनाएं

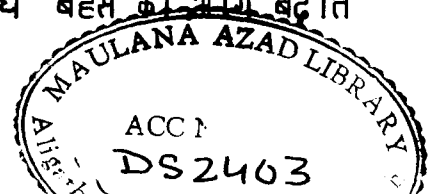
सौन्दर्याभिरूचियाँ आदि समाज में जारी वर्ग संघर्ष से विशिष्ट विशिष्ट रूप से प्रभावित होती है और उनमें युक्त साहित्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कमोवेश वर्ग संघर्ष के उस विशिष्ट रूप को प्रभावित भी करता है अतः साहित्य और राजनीति का कार्य क्षेत्र यद्यपि भिन्न होते हैं फिर भी उनकी भिन्न भूमिकाएँ एक समान लक्ष्य की दिशा में समाज को प्रेरित करने वाली होती है ।

“साहित्य और राजनीति के अंतः सम्बन्ध” विषय पर नवल किशोर तथा श्री वैजनाथ ने अपने विचार व्यक्त किये हैं ।

नवल किशोर के अनुसार, “साहित्य और राजनीति में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । जो लोग यह मानकर चलते हैं कि राजनीति का साहित्य से कोई वास्ता नहीं है या साहित्य में राजनीति का प्रवेश एक अनाधिकार घेष्टा है या विचारधारा के चश्मे को उतार कर ही साहित्य का सृजन किया जा सकता है, वे वास्तव में किसी खास राजनीति की ही वकालत करते हैं ।

वैजनाथ राय का मानना है कि साहित्य और राजनीति का परस्पर अभिन्न सम्बन्ध है । राजनेता साहित्य के क्षेत्र की विशिष्टता को प्रायः भुला देते हैं और दोनों क्षेत्रों को एक मानकर एक दूसरे के कार्य में अनाधिकार दखलंदाजी करने लगते हैं । साहित्य को सत्ता के लिए किया जाने वाले संघर्ष का माध्यम या हथियार मानकर साहित्यकार यदि अपने सृजन कार्य को भुलाकर नारे बाजी करने लगता है, तो राजनेता साहित्य से राजनीतिक घटनाओं और कार्यक्रमों का अनुसरण करने की अपेक्षा करने लगता है । यह अनुचित घेष्टा शायद “पार्टी-साहित्य” और सृजनात्मक साहित्य” का फर्क व समझ पाने के कारण होती है लेकिन इससे राजनीति का तो कुछ भला होता नहीं साहित्य भी कोरा राजनीतिक प्रचार बनकर रह जाता है जिसे साहित्य का दर्जा न तो कभी दिया गया है न ही दिया जा सकता है ।

“साहित्य और राजनीति के अन्तः सम्बन्ध” बहस को अपने बढ़ाते



हुए कर्णसिंह चौहान लिखते हैं, साहित्य और राजनीति में अन्तः सम्बन्ध का एक वैज्ञानिक आधार है जो चीजों के आवयविक रिश्तों को स्पष्ट करता है सभी कम्युनिस्ट और वामपंथी लेखक इसे बिना छिपाये भी कहते हैं लेकिन वे लेखक जो साहित्य और राजनीति के बीच कोई सम्बन्ध या तो स्वीकार ही नहीं करते या उसे अवांछित मानते हैं उनकी स्थिति बड़ी ही विचित्र है। व्यक्तिगत स्तर पर ये अधिकांश लेखक सत्ताधारी वर्ग से और उसके प्रमुख सत्ता संस्थानों से बड़े नजदीकी रूप से जुड़े होते हैं और उसके वर्ग हितों की सेवा में कुछ उठा नहीं रखते।

"जन संस्कृति क्या है?" विषय पर ई० एम० एस० नंबूदरीपाद का विस्तृत मत सम्पादक ने कथन में प्रकाशित किया। इस विषय पर नंबूदिरिपाद का विचार है कि "जन संस्कृति निस्संदेह मेहनतकश जनता की संस्कृति है दूसरी ओर इसके मुकाबले पर है शोषक वर्गों की संस्कृति। लेकिन संस्कृति के कुछ रूप ऐसे हैं जो वर्गों से ऊपर लग सकते हैं। वे सभी कला रूप जिन्हें हम आम तौर पर "लोक संस्कृति" का नाम देते हैं, शायद इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं।

"यथार्थवाद और समकालीन कथासाहित्य" विषय पर शिवकुमार मिश्र ने समकालीन कथासाहित्य कितना यथार्थवादी है? उसका समकालीन सामाजिक यथार्थ से क्या और किस प्रकार का रिश्ता है? यदि वह यथार्थवादी है तो उसके यथार्थवाद का स्वरूप क्या है? पश्चिमी और समाजवादी देशों की यथार्थवादी रचना और आलोचना से आज हम कौन सबक तथा कौन सी प्रेरणाएं ले सकते हैं? प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा को आज के कथाकार त्याग रहे हैं अपना रहे हैं? अपना रहे हैं तो किस रूप में? और किस हद तक आगे बढ़ा रहे हैं? आदि प्रश्नों पर विचार किया है। उनका मानना है कि यथार्थवाद महज एक रचना पद्धति नहीं है। वह एक आयाम यदि कथा रचना के प्रति हमारे सरोकारों से जुड़ता है तो दूसरा आयाम जिंदगी के प्रति हमारे सरोकारों अथवा जिन्दगी के बारे में हमारे सोच से भी जुड़ता है।

लुकाच ने यथार्थवाद को परिभाषित करते हुये कहा है, "यथार्थवाद मिथ्या वस्तु परकता तथा मिथ्या आत्मपरकता के बीच का कोई मध्यमार्ग नहीं है वरन् इसके विपरीत वह हमारे समय की भूलभूलैया में बिना किसी नक्शे के सहारे भटकने वाले लोगों के द्वारा गलत रूप में पेश किये गये प्रश्नों के फलस्वरूप उत्पन्न समस्त प्रकार के झूठे असमंजसों के विरुद्ध एक सत्य तथा सही समाधानों तक पहुँचाने वाला तीसरा रास्ता है। यही नहीं यथार्थवाद इस तथ्य की स्वीकृति है कि कोई साहित्यिक कृति न तो किसी निष्प्राण औसत पर आश्रित हो सकती है, जैसा कि प्रकृतवादियों का विचार है और न ही किसी एकदम शून्य में अपने आपको पूर्णतः घुला देने वाले किसी व्यक्तिगत सिद्धान्त पर यथार्थवादी साहित्य की केन्द्रीय कोटि तथा प्रतिमान वह मनुष्य है जिसकी चरितार्थता उस संश्लेषण में देखी जा सकती है जो चरित्रों की तथा परिस्थितियों की सामान्य तथा विशेष दोनों भूमिकाओं को एक आवयविक एकता में बांध देता है। जो बात प्रतिनिधि को सही अर्थों में प्रतिनिधि बनाती है वह यह है कि उसके अन्तर्गत मानवीय तथा सामाजिक दृष्टि से अनिवार्य सारे आवश्यक तत्व अपने भीतर निहित संभावनाओं के अंततः पूरी तरह होने वाले उद्घाटन के कारण अपने विकास के उच्चतम स्तरों के साथ विद्यमान रहते हैं। तथा इस क्रम में मनुष्य और युगों की सीमाओं और शिखरों को एकदम मूर्त कर देते हैं। इस प्रकार सच्चा और महान यथार्थवाद मनुष्य या समाज के मात्र इन या उन पक्षों को दिखाने के बजाय उन्हें उनकी सम्पूर्णता में समग्र इकाईयों के रूप में चित्रित करता है।"

"कहानी की यथार्थवादी परम्परा" विषय पर जानकी प्रसाद शर्मा लिखते हैं समकालीन कहानी में यदि आज यथार्थ का एक पुख्ता और वसीह रूप उभर कर सामने आया है तो उसकी वजह यही है कि कहानीकार ने न केवल पूर्ववर्ती कहानी की एक विशेष धारा की जीवन-विरोधी मूल्य दृष्टि के खिलाफ लड़ने में आत्म संघर्ष किया है बल्कि उसने सामाजिक न्याय की लड़ाई से जुड़ने में आत्म संघर्ष किया है बल्कि उसने सामाजिक न्याय की लड़ाई से जुड़े हुए मुख्य

अंतर्विरोधों तथा जनता की आकांक्षाओं और उनके जीवन की विविधता को गहरी सम्बेदनशीलता के साथ समझा है। यह जन आन्दोलनों का दवाब ही है कि यथार्थवादी रचनाकार अपने रचना धर्म को कोई जाती काम तस्लीम नहीं करता है, वह जिन जीवन मूल्यों का पक्षधर है उसके निर्माण की प्रक्रिया से सक्रिय रूप से रिश्ता कायम करता है जो वास्तविक यथार्थवादी रचनाकार हैं उनकी तो यह आन्तरिक जरूरत ही है लेकिन यथार्थ की आम स्वीकृति की सबसे बड़ी मिसाल यह है कि व्यवस्था से जुड़े घोर प्रतिक्रियावादी लेखक भी जनता से सक्रिय जुड़ाव का छंद रच रहे हैं तथा रचना और आलोचना में निराकार यथार्थ की रट लगा रहे हैं।

"यथार्थवाद का स्वरूप" विषय पर भगवान सिंह ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि कला में यथार्थ का चित्रण आदिकाल से ही होता चला आया है कलाकार जहां यथार्थ से विमुख होता है यथार्थ से पलायन कर किसी कल्पना लोक में शरण लेना चाहता है या यथार्थ का निषेध करना चाहता है। वहाँ की यथार्थ के साथ एक विलोम या तिर्यक सम्बन्ध रखता है, प्रकृतवाद, स्वच्छन्दतावाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद सभी यथार्थ को अपने चश्मे से देखते हैं और वस्तुगत यथार्थ के साथ अपने टकराव कर अपने निजी ढंग से प्रतिक्रिया करते हैं।

"आधुनिक साहित्य : जनवाद की परम्परा" विषय पर विष्णु प्रभाकर ने अज्ञेय, गोर्की, चेखोव, तोलस्तोय आदि के उदाहरण को देते हुए कहते हैं - इस जनवाद को समझने के लिए जन की व्यथा को समझना चाहिए, उसके पीछे जो अर्थ है उसे समझना चाहिए, उसके पीछे जो अर्थ है उसे समझना चाहिए, यह तभी संभव हो सकता है जब हम उसके दर्द सहने की यातना को आत्मसात कर सकें तभी रचना संवेदना का विस्तार कर सकेंगी। तभी सार्थक साहित्य का जन्म होगा, तभी हम क्रान्ति का पथ प्रशस्त कर सकेंगे।

"आलोचना और समाजवादी यथार्थवाद का संबंध" विषय पर अरुण माहेश्वरी का विचार है कि समाजवादी यथार्थवाद की रचनाएं आलोचनात्मक

यथार्थवाद की रचनाओं से श्रेष्ठ होती हैं या नहीं इस संदर्भ में यह याद रखना चाहिए कि सृजनशीलता किसी दैवी प्रतिभा की उपज नहीं है। साहित्य के स्तर को निश्चित रूप से लेखक के विचारधारात्मक विकास का स्तर, उसकी सामाजिक बद्धता का अंश और उसकी समझ अनुशासित करती है। विचारधारा तथा प्रतिबद्धता लेखक की यथार्थ को देखने, समझने और अभिव्यक्त करने की सर्जनात्मक शक्ति को रूपायित करने वाले तत्वों में से अन्यतम है।

समाजवादी यथार्थवाद स्वयं सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र में हर प्रकार के जड़ सूत्रों की स्थापना के खिलाफ साहित्य पर किन्हीं शाश्वत प्रतिमानों को लादने की कोशिशों के खिलाफ संघर्ष की समझ प्रदान करता है, क्योंकि ऐसी हर कोशिश यथार्थवाद की सीमाबद्ध करने की ऐसी घातक प्रवृत्ति है जो जिन्दगी की मतिशीलता से काटकर उसके बुनियादी चरित्र को बदलने का हेतु बनती है।

"कथासाहित्य में यथार्थवाद के विभिन्न रूपों को कैसे अलगया जा सकता है।" विषय पर ओमप्रकाश ग्रेवाल का कहना है कि यथार्थवादी साहित्य रचना के लिए सही जीवन-दृष्टि अपनाने और व्यापक जनता के साथ ज्यादा घनिष्टता से जुड़े होने के अलावा एक और आवश्यक शर्त जो पहली दोनों शर्तों से ही निकलकर आती है यह है कि साहित्यकार समाज को केवल समझने की ही कोशिश न करे बल्कि उसमें हस्तक्षेप करके उसको बदलने के लिए लालायित हो।

सही जीवन दृष्टि संवेदना की व्यापकता और समाज को बदलने की तत्परता के साथ-साथ यथार्थवादी साहित्य रचना के लिए आवश्यक शर्त यह भी है कि लेखक में रचनाशक्ति या साहित्य प्रतिभा होनी चाहिए। लेखक की जीवन दृष्टि चाहे सही-सही चाहे वह व्यापक जन समुदाय की समस्याओं, पीड़ाओं उल्लासों और आकांक्षों से जुड़ा हुआ हो, चाहे उसमें समाज को बदलने की कितनी ही तीव्रता, इच्छा या तत्परता हो यदि वह भाषा के प्रयोग में या शिल्प और रूपों के प्रयोग में कुशल और सिद्धहस्त नहीं है तो उसकी रचनाएं उतनी यथार्थवादी नहीं होंगी जितनी उस रचनाकार की जिसमें उपर्युक्त अन्य तीन बातों के साथ-साथ यह साहित्यिक प्रतिभा भी है।

"यथार्थ के विकसित सन्दर्भ और प्रेमचंद के उपन्यास" विषय पर

चन्द्रभूषण तिवारी लिखते हैं यथार्थवाद के संबंध में प्रेमचन्द की कुछ अपनी धारणाएँ भी थीं यथार्थवाद तब उनकी निगाह में हमारी दुर्बलताओं, विषमताओं और कूरताओं का नग्न चित्रण हुआ करता था । वे उसे विश्लेषित करते हुए कहते हैं यथार्थ हमको निराशावादी बना देता है, मानव चरित्र से हमारा विश्वास उठ जाता है अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है, आदर्शवाद, इसके विपरीत हमें ऐसे चरित्रों से परिचित करता है जिनके हृदय पवित्र होते हैं जो यथार्थ और वासना से रहित होते हैं जो साधु प्रकृति के होते हैं । लेकिन आदर्शवाद में जहाँ यह गुण है वहाँ इस बात की शंका भी है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धान्तों की मूर्ति मात्र हों जिनमें जीवन न हो । इसलिए प्रेमचन्द अपनी ओर से यह समाधान प्रस्तुत करते हैं कि "वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं प्रेमचन्द के साहित्य की यह एक केन्द्रीय विशेषता है कि वे कहीं से तटस्थ नहीं हैं बल्कि राजनीतिक स्तर पर संबद्ध हैं उनका यह इन्वाल्वमेंट उनकी कृतियों में दीखता है । इस देश के बहुसंख्यक वर्ग के हितों को गरीब, किसान, खेतिहर मजदूर और निम्न मध्यवर्ग तथा औरतों के एक विशाल भाग को केन्द्रित करते हुए उन्होंने इसे लगातार प्रमुखा दी है बल्कि उसी को ध्यान में रखकर वह निर्मित है और प्रारम्भ से अन्त तक उसके प्रति उनकी पक्षधरता व्यक्त हुई है । चंद्रवली सिंह के अनुसार ऐसी शक्तियों की पक्षधरता, जो इस देश को क्रान्तिकारी जनवादी दिशा में ले जाने के लिए प्रयत्नशील रही है "प्रेमाश्रम", "रंगभूमि", "कायाकल्प", "कर्मभूमि", "गोदान" आदि सभी प्रमुख कृतियों में व्यक्त हुई है लिहाजा प्रेमचन्द के यथार्थवाद के लिए चन्द्रवली जी के द्वारा दी गयी संज्ञा "क्रान्तिकारी जनवादी यथार्थवाद अथवा जनवादी यथार्थवाद अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

इस तरह "कथन" में प्रकाशित सभी बहस विषय और विचार की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि के हैं ।

॥च॥ "कथन" में प्रकाशित अन्य स्तंभों का विश्लेषणात्मक अध्ययन :

॥१॥ समीक्षा :

"कथन" में समय-समय पर पुस्तक समीक्षाएं प्रकाशित होती रही हैं । नमिता सिंह की कहानी संग्रह "खुले आकाश के नीचे" की समीक्षा राजकुमार शर्मा ने किया है । वे लिखते हैं कि नमिता सिंह के पास जो अनुभव संसार है वह मध्यवर्गीय जीवन सन्दर्भों से जुड़ा एक सीमित अनुभव संसार है । लेकिन अनुभवों की यह दुनिया छोटी होते हुए भी बन्द नहीं है, बाहरी दुनिया के प्रभावों के लिए खुली है । सामाजिक जीवन और राजनीतिक हलचलों से जुड़े सही गलत लोग अपने प्रवेश और निर्गम से इसकी मध्यवर्गीय स्वायत्तता को तोड़ते हैं ।

इस संग्रह के अधिकतर कहानियों के केन्द्र में और कुछ के हाशिये पर परम्परा प्रेमी परिवार की एक सुशिक्षित मध्यवर्गीय लड़की है । जो कुछ अध्ययन के जरिये तथा कुछ सामाजिक संपर्कों की वजह से, सर्वहारा की राजनीति से मानसिक तौर पर जुड़ती है । इस प्रक्रिया में उसका सामना अनेक प्रगतिशील चरित्रों से होता है, जो प्रगतिशील विचारधारा को महज फैसान के तौर पर ओढ़ते हैं । मूलतः ऐसे चरित्र अपनी मध्यवर्गीय आकांक्षाओं के दास हैं ।

मौजूदा सामाजिक ढांचे में स्त्री और पुरुष के रिश्ते तथा प्रेम और विवाह से जुड़ी समस्याओं को इन कहानियों में पूरी गम्भीरता से उठाया गया है । एक दो कहानियों को छोड़कर यह समस्या गाँव-बगाँव हर एक कहानी में उठी है ।

"एक निर्णय" का नायक, "काले अधरे की मौत" का सतीश,

"लहरों के बीच" का सुबोध, "ममी" का अक्षय तथा "नाले पार का आदमी" मुकुल ऐसे ही चरित्र हैं, जिसकी प्रगतिवादी विचारधारा और क्रियात्मकता में व्यक्तिगत स्तर पर बहुत अन्तर है।

इन कहानियों की संरचनात्मक कमजोरी यह है कि ये सिर्फ अपनी ओर मुखातिब मानसिकता का स्कालाप है। इस पद्धति में यथार्थ की अच्छी पकड़ सम्भव नहीं। यहाँ एक ऐसा एकहटा रूपबंध सामने आता है। जो चरित्र की मनःस्थितियों और प्रतिक्रियाओं को स्कायामी भी प्रवाह में प्रस्तुत करता चला जाता है। यथार्थ को वस्तुपरक सन्दर्भों से अलग कर आत्मपरक सन्दर्भों में देखने की यह प्रवृत्ति कहानीकार की आत्म-सजगता से आगे नहीं बढ़ने देती, ऐसी दशा में कहानी एक खास तरह की आत्ममुखी मानसिकता या भावदशा का आलेख मात्र रह जाती है।

इससे अलग कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें सीधे सीधे आधारभूत वर्गों और उनके संघर्ष की राजनीति से जुड़े पात्रों के जीवन सन्दर्भ को कथानक का आधार बनाया गया है। "खुले आकाश के नीचे" "काले अधिरे की मौत" "ठहरा हुआ सवेरा" तथा "नाले पार का आदमी" इसी श्रेणी की कहानियाँ हैं।

"समकालीन हिन्दी कविता: जनवादी परिप्रेक्ष्य" विषय की समीक्षा करते हुये आनन्द प्रकाश लिखते हैं जब अपने परिवेश के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदलता है तो समाज और प्रकृति के विभिन्न तत्वों के विषय में हम बिल्कुल नये ढंग से सोचने लगते हैं। जिन वस्तुओं को हम पहले रूक्ष, अव्यवस्थित और बेढंगा मानते थे, उन्हें अब जीवन्त और अर्धवान मानने लगते हैं। तब दृष्टिकोण का यह परिवर्तन हमारी रचनाधर्मिता को भी प्रभावित करता है। रचना अब किसी सुसज्जित एवं चमकदार मगहौल की चीज न होकर शोषित वर्गों की मांसल जीवन क्रिया को प्रतिबिम्बित करने लगती है। कविता में जब यह परिवर्तन आता है तो सामान्य लेखन को कवि हिकारत की नजर से देखने लगता है।

"आज की जनवादी कविता-- स्वर और संवेदना " विषय पर नन्द भारद्वाज लिखते हैं, इस दौर में प्रकाशित हुये कुछ जनवादी कवियों के संग्रहों में से आज की जनवादी कविता के केन्द्रीय स्वर और काव्य संवेदन की जाँच परख और अंतरंग की पहचान के लिए चार कविता संग्रह सामने हैं । हरीश भादानी का गीत संग्रह "खुले अलाव पकाई घाटी", चंद्रकांत देवताले का कविता संग्रह, "लकड़बग्घा हंस रहा है, कुलदीप सलिल का "बीस साल का सफर" और सोमदत्त का "किस्सा अरबों है" । कविता को लेकर चारों ही कवियों की संवेदना सोच और चिन्ताएँ लगभग एक सी हैं । लेकिन अभिव्यक्ति के स्तर और तेवर में काफी भिन्नताएँ हैं । हरीश भादानी और चंद्रकांत देवताले के काव्य में जहाँ समझ, अनुभव और अभिव्यक्ति की परिपक्वता दिखाई देती है वहीं कुलदीप सलिल और सोमदत्त में जनवादी काव्य चेतना के विकास की अच्छी सम्भावनाएँ अपनी जमीन से गहरा आन्तरिक जुड़ाव, इन सभी कवियों की रचनाशीलता की एक प्रमुख विशेषता है । उनका यह जुड़ाव इन कविताओं की विषय वस्तु, भाषा और उनकी रचना प्रक्रिया में सहज ही देखा जा सकता है ।

सोमदत्त, कुलदीप सलिल और चंद्रकांत देवताले की कविताओं तथा हरीश भादानी के जनवादी गीतों के माध्यम से न केवल जनवादी कविता का विकास हुआ है बल्कि शोषण के विरुद्ध जारी मानवीय संघर्ष का वैचारिक और सांस्कृतिक पक्ष और मजबूत हुआ है ।

"कहानी के नये विषयों और रूपों की तलाश" शीर्षक समीक्षा में कर्ण सिंह चौहान ने रमेश उपाध्याय के तीन नये कहानी संग्रह "चतुर्दिक", "बदलाव से पहले" और "पैदल अधिरे में" की समीक्षा की है ।

आजादी के संघर्ष के दौरान और उसके बाद भी इस देश में आतंक के दहशत भरे अधिरे, क्रूरशोषण और दमन का साम्राज्य रहा है । इस भयावह माहौल को सामाजिक यथार्थ और मानव मन के अन्दर तक देखने और दिखाने वाले रचनाकार भी रहे हैं । लेकिन देखो-देखो में बहुत बड़ा फर्क रहा है । कुछ ने इस अंधेरे घुटन और पीड़ादायक यथार्थ का समाज और मनुष्य को न्यति मानकर देखा और दूसरों ने इसे काटकर उभर रही सामाजिक शक्तियों और मानव चेतना के उभार के नजरिये से देखा । यथार्थवादी परम्परा हिन्दी कहानी में

प्रेमचंद से शुरू होकर किसी न किसी रूप में आज तक चली आयी है। हिन्दी में आजादी के बाद उभरा जनवादी आन्दोलन इसी परम्परा का एक सशक्त उभार है और यह, कहने की जरूरत नहीं है कि इस आन्दोलन ने आजादी के बाद व्यक्तिवादी निराशावादी दर्शनों के भंवर में पड़ी रचना को फिर से अपनी सही जमीन दी है।

"इसराइल का कथा साहित्य जनवादी यथार्थवाद की विशिष्ट उपलब्धि" विषय पर ओमप्रकाश ग्रेवाल लिखते हैं, "किसी भी वर्ग विभक्त समाज में वर्ग संघर्ष एक केन्द्रीय सच्चाई होता है, भले ही सामाजिक जीवन के कुछ पहलुओं में इस सच्चाई की छाप सीधे-सीधे न दिखाई देती हो। आज वर्ग संघर्ष किस रूप में हमारे समाज में विद्यमान है और हमारे सभी अनुभवों को वह कैसे प्रभावित कर रहा है इसे देखने और समझ पाने के लिए सही विचार-धारात्मक प्रतिबद्धता एकदम जरूरी हो जाती है। जिस गम्भीरता के साथ इसराइल वर्ग संघर्ष के तत्कालीन स्वरूप को मूर्त रूप देने के लिए "रोजनामचा", "धेरा", "मुत्कान", "फिर उसी कहानी की" तथा "रात बाकी थी" जैसी रचनाओं में जूझते हुये दिखायी देते हैं और जिस अंतरंग जानकारी और वस्तु परकता के साथ वे दमन और उत्पीड़न के टक्कर लेने वाले लोगों की पीड़ाओं, लालसाओं तथा उनकी सीमाओं और कमजोरियों को रेखांकित करते चलते हैं, यह स्पष्टतः उनकी ठोस विचारधारात्मक प्रतिबद्धता का ही प्रतिफलन है।

इसके अतिरिक्त कुर्सी पर टिकी हुयी आलोचना-जानकी प्रसाद शर्मा आज की जनवादी कविता की विरासत - ओमप्रकाश ग्रेवाल, मार्कण्डेय अग्नि बीज रमेश उपाध्याय, चात्रिकता और उलझाव रहित यथार्थवादी नाटक जवरी मल्ल पारख, जनवादी कविता की तेज होती धार—रामकुमार शर्मा, मध्यवर्गीय जीवन अर्थ कहाँ पाता है—रमेश उपाध्याय की जीवन्त तथ्यपरक समीक्षाएँ "कथन" में प्रकाशित हुयी हैं।

2. कहानी की जमीन :

इस स्तम्भ के माध्यम से सम्पादक हमें विभिन्न प्रदेशों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभ्यताओं से परिचित कराता है। बिहार एक ऐसा प्रदेश है जो दमन की अत्यंत क्रूर और अमानुषिक घटनाओं के लिए चर्चा का विषय है। मुकुल कहानी की जमीन स्तम्भ में "बिहार में बटाईदार" विषय पर लिखते हैं। बिहार की अर्द्ध सामन्ती कृषि व्यवस्था और उसकी सभी सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थानों में जमींदारों के भू-स्वामित्व और किसानों की भू-दासता के सबसे स्पष्ट और कुत्सित परिणाम बटाईदार है। बटाईदार साधारणतः किसान हैं जो अपनी गरीबी और मोहताजी से फुटकारा पाने के गर्ज से श्रमशक्ति बेचने के लिए लाचार होकर उपज में हिस्से की उजरत पर खेत बनिहारी और रोजीनादारी करते हैं। उनकी सामाजिक, आर्थिक, हैसियत खेत मजदूरों से बेहतर नहीं रहती।

मुकुल बिहार में कृषि भूमि, मजदूर, खेतीहर मजदूर, बटाईदार आदि का आंकड़ा देते हुए कहते हैं कि बिहार में बटाईदार के कई तरीके प्रचलित हैं और कई विचित्र प्रथाएं अस्तित्व में हैं, लेकिन कानूनी रूप में मान्य प्रचलन वही है जिसमें उपज के बटवारे के विषय में रैयत और दररैयत के बीच कायम समझौते के आधार पर खेती होती है।

बटाईदारों को जमीन से बेदखल करने का भू-स्वामियों का आम रवैया यह है कि किसी एक बटाईदार को लगातार कई सालों तक खेत जोतने का मौका न देकर दो तीन सालों में बटाईदारों में ढेर फेर कर दिया जाता है। भू-स्वामी अपने लठैतों के बल पर यदि बटाईदारों को बेदखल करने में सफल नहीं होता तो पुलिस, मजिस्ट्रेट आदि जमींदार की मदद करते हैं। कानूनन कोई भू-स्वामी अपने बटाईदार के उपज का ज्यादा से ज्यादा एक चौथाई भाग ले सकता है तथा पुआल भूसा आदि पर बटाईदार का अधिकार होना चाहिए, लेकिन व्यवहार में बिहार में आज तक भू-स्वामी बटाईदार से या तो उपज का

आधा अथवा आधे से ज्यादा हिस्सा लिया करता है और इसी अनुपात में पुआल और भूसा भी बँटवा लेता है ।

1979 में दिल्ली के राष्ट्रीय श्रम संस्थान में पूर्णिया में एक शिविर का आयोजन किया । असगर वजाहत इस आयोजन में भाग लेने पूर्णिया गये तथा उसकी रिपोर्ट "बिहार के गाँवों में चन्द रोज" शीर्षक में देते हुये कहते हैं कि बिहार का सामाजिक जीवन कैसा है वहाँ के सामान्य लोगों का जीवन, कृषि सम्बन्ध आदि कितने ही भ्रष्ट और दोषपूर्ण हैं, इस पर वहाँ के लोगों से बात-चीत को प्रस्तुत किया है ।

"मसूरी के बहाने भारत के पहाड़ी सैरगाहों पर एक नजर" विषय पर मुकुल और यादवेंद्र लिखते हैं कि 1815 से लेकर उपनिवेशवादी शासन के अन्त तक भारत में चार हजार से आठ हजार फीट की ऊँचाई पर कम से कम अस्सी पहाड़ी स्थल हिल स्टेशन बसाये गये । इस विकास क्रम में कश्मीर शामिल नहीं है क्योंकि उसका विकास मुगल शासन काल में किया गया था । हिन्दी साहित्य में हिल स्टेशनों के बारे में बहुत सी कहानियाँ और उपन्यास लिखे जाते हैं परन्तु उनका नजरिया सतही तथा प्राकृतिक सौन्दर्य तक सीमित रहता है । उनका उद्देश्य व्यक्ति के अकेलेपन, अजनबीपन, खालीपन के सन्दर्भ में या फिर व्यक्तिगत शान्ति और सुकून के सन्दर्भ में इसे प्रस्तुत करना या फिर सम्पन्न लोगों पर व्यंग्य और गरीब लोगों के कष्ट रूप को चित्रित करना होता है, पर इस लेख में मसूरी को केन्द्र बिन्दु बनाकर भारत के पहाड़ी सैरगाहों का आर्थिक-सामाजिक यथार्थ प्रस्तुत किया गया है ।

"बस्तर के आदिवासियों की संघर्ष कथा" लेख में हरिहर वैष्णव देश के विभिन्न भागों की यथार्थ परिस्थितियों से हमारा परिचय कराने की ही श्रृंखला में बस्तर के आदिवासियों से हमारा परिचय कराते हुये लिखते हैं कि बिहार में एक स्थान है बस्तर, वहाँ के भोले-भाले आदिवासियों की जमीन केवल चंद रूपयों में सेठों और महाजनों के पास पहुँच गयी है । अब स्थिति यह है कि खेती करने तथा मकान बनाने के लिए इन्हें सरकार का मुँह देखना पड़ता है ।

इन आदिवासियों को जंगल से जितना मोह है शायद ही किसी और को उसका शतांश भी नहीं होगा, इन्हें जंगल काटने का शौक नहीं है। यह इनकी विवशता है। इनका कहना है कि "सरकार अगर हमें जमीन मुहैया करा दे तो भला हमें क्या पड़ी है कि हम जंगल को काटते फिरेगें। भाई जी जंगल तो हमें अपने बाल बच्चों से ज्यादा प्यारे हैं। हम यहाँ जनम लेते हैं, पलते हैं और बड़े होते हैं। जिस जंगल से हमारा जनम मरण का नाता हो उसे हम यों ही नहीं काट देंगे, लेकिन क्या करें पेट पालने के लिए कोई साधन भी जरूरी है न।

महाकाव्यों और पुराणों में स्त्री और सम्पत्ति के सहसंदर्भ -विषय पर रामशरण शर्मा की पुस्तक "वर्तमानिक इतिहास सोशल एंड इकोनॉमिक हिस्टरी ऑफ अर्ली इण्डिया" के चौथे अध्याय का हिन्दी अनुवाद है। जिसमें विभिन्न उदाहरणों द्वारा वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति और पत्नी केन्द्रित परिवार की संस्थाएँ न केवल राज्य की उत्पत्ति का मुख्य कारण मानी जाती थी बल्कि इन्हीं से प्रेरित होकर लोग विभिन्न प्रकार के सामाजिक कर्मों में प्रवृत्त होते थे तथा स्त्री और सम्पत्ति को अनेक सन्दर्भों में एक साथ रखा गया है। इसलिए कोई संदेह नहीं रह जाता कि स्त्री स्वयं भी एक प्रकार की सम्पत्ति मानी जाती थी। उसको अपनी स्वतंत्र इच्छा से कुछ भी करने योग्य नहीं समझा जाता था और सम्पत्ति की किसी भी वस्तु की तरह उसको दानया उधार के रूप में दिया जा सकता था। स्त्री के प्रति यह दृष्टि व्यक्तिगत सम्पत्ति पर आधारित ठेठ पित्रसन्तामक समाजवादी दृष्टि थी। इस दृष्टि के कारण ब्राह्मणों द्वारा बनाये गये कानून में स्त्रियों को सम्पत्ति का कोई अधिकार नहीं दिया गया है। स्त्री धन की व्यवस्था यदि मिलती भी है तो वह बहुत ही सीमित ढंग की व्यवस्था है और इससे आगे नहीं जाती कि पत्नी को दिये गये रत्न, आभूषण और उपहार उसके होते हैं।

जैसा कि कहानी की जमीन स्तम्भ में सम्पादक देश के विभिन्न भागों की समस्याओं से सम्बन्धित रिपोर्ताज एवं विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित हुए हैं इसी श्रृंखला में डी०आर०चौधरी का लेख "हरिषाप्ता का सांस्कृतिक परितुल्य"

में हरियाणा की कुछ विशिष्ट सांस्कृतिक समस्याओं को उठाया गया है। आज भी हरियाणा में कोई अपना महत्वपूर्ण अखबार या पत्रिका नहीं है। यहाँ के लोग दिल्ली या जालंधर के अखबार पढ़ते हैं, न ही वहाँ कोई सांस्कृतिक मंच है जिससे जनता तक आसानी से पहुँचा जा सके। आज देश में हरियाणावी का मतलब है गंवार। हरियाणावी अपने को हरियाणावी कहने में झिझकेगा इसका कारण यह है कि दिल्ली देश की राजधानी रही है और इसके तीनों ओर हरियाणा लगता है। हरियाणा से धिरे होने के बावजूद दिल्ली हरियाणा के जीवन से अलग-अलग रही। इसने हरियाणा से बहुत कुछ लिया लेकिन दिया कुछ भी नहीं। यहाँ की उपज का बड़ा हिस्सा दिल्ली जाता रहा, यही कारण है कि हरियाणा के लोग अपनी विशिष्ट संस्कृति और जातीयता न बैदा कर सके और आज भी एक बौनी संस्कृति और सिकुड़ी हुयी जातीयता के शिकार है।

॥३॥ हमारी विरासत :

हमारी विरासत स्तम्भ में पुराने साहित्यकारों के उन निबन्धों तथा लेखों को लिया गया है जिस पर या तो आज पुनर्विचार की आवश्यकता है या उसकी प्रसंगिकता आज भी बनी हुयी है। प्रेमचन्द का लेख "साम्प्रदायिकता और संस्कृति" जो सन् 1934 में प्रकाशित हुआ उस पर आज पुनर्विचार की आवश्यकता है। साम्प्रदायिक सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसीलिये शायद वह गधे की भाँति जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल के जानवरों पर रोब जमाता फिरताथा। संस्कृति का खोल ओढ़कर आती है। हिन्दु अपनी संस्कृति को क्यामत तक सुरक्षित रखना चाहते है। मुसलमान अपनी संस्कृति को अछूती समझ रहे हैं वे यह भूल गये हैं कि अब न कहीं मुसलिम संस्कृति है न कहीं हिन्दू संस्कृति, न कोई अन्य संस्कृति। धर्म का संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस पर विचार किया जाना चाहिए।

"हमारी प्रगतिशीलता" राहुल सांकृत्यायन का निबन्ध 1943 में हंस में प्रकाशित हुआ था। प्रगतिशील का अर्थ है गतिशील और इस दृष्टि हिन्दी साहित्य का प्रत्येक युग तथा प्रत्येक साहित्यकार एवं रचनाकार प्रगतिशील है। साहित्य में प्रगतिशीलता की माँग है कि वह जितनी ही विस्तृत हो उतनी ही गहरी भी हो। जितनी ही देश में फैली हो उतनी ही एक-एक व्यक्ति के पास पहुँची हुई हो। इस गहराई को लाने के लिए मातृ-भाषाओं के द्वारा शीघ्र से शीघ्र सारी जनता को साक्षर और शिक्षित, कलासाहित्य पारखी बनाने के सिवा और कोई रास्ता नहीं।

"किसानों का संगठन" शीर्षक लेख 1924 में महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखा गया था। जिसमें संगठन को परिभाषित करते हुये वे लिखते हैं कि, बिखरी हुयी चीजों की व्यवस्था करना, उन्हें एक सूत्र में बाँधना, नियमपूर्वक उन्हें किसी क्रम में रखना संगठन कहलाता है। संहति और स्माहार शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, उसी अर्थ में आज कल संगठन शब्द का प्रयोग होता है।" पुराने पण्डितों ने लिखा है - "तृणौर्गुणात्त्वमानन्नेर्वध्यते मन्तंदतिनः" तृण के पतले-पतले टुकड़े उंगली का झटका लगते ही खण्ड-खण्ड हो जाते हैं परन्तु यदि गाँठ कर उन्हीं का मोटा रस्सा बना लिया जाता है तो मतवाले हाथी तक उससे बाँधि जा सकते हैं।

संगठन की महिमा को जानकर भी भारतवासी दुर्भाग्य तथा अन्य कई कारणों से भी फूट का शिकार हो रहे हैं। विवेक दूरदर्शिता, हिताहित की शक्ति रखने वाले शिक्षित जब स्वार्थ और धर्मधिता का शिकार हैं तो अशिक्षितों का कहना ही क्या। वे बेचारे तो अज्ञान के अंधकूप में पड़े हुये अपने दुर्भाग्य को रो रहे हैं। भारत कृषि प्रधान देश है जहाँ की अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर है अतः यहाँ किसान संगठन का बड़ा महत्व है परन्तु किसानों का संगठन विधिपूर्वक और पूर्वभाव से करना सहज नहीं। यह बहुत कठिन और बड़े खर्च का काम है। पर असम्भव नहीं है अतः इसको निष्ठापूर्वक किया जाना चाहिए।

"भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है" भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का बलिया के दादरी मेले के समय आर्यदेशोपकारिणी सभा में एक व्याख्यान §1850-1885§ में दिया था। उसको भाषा और वर्तनी के कुछ परिवर्तन के साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है। उनका कहना है कि हमारे हिन्दुस्तानी लोग तो रेलगाड़ी है हॉलाकि इस ट्रेन में फ़स्ट क्लास, सेकेंड क्लास आदि अच्छे-अच्छे और ऊँच किराये वाले डिब्बे लगे हुए हैं पर यह ट्रेन बिना इंजन के नहीं चल सकती। उसी तरह हिन्दुस्तानी लोगों को कोई चलाने वाला होना चाहिए। कोई चलाने वाला हो तो वे क्या नहीं कर सकते। बहुत से लोग यह कहेगें कि हमको पेट के धन्ये से फ़ुरसत ही नहीं रहती है बाबा हम क्या उन्नति करें। तुम्हारा पेट भरा है तुम्हें दून की सूझती है। आलस तो यहाँ इतना बढ़ गया है कि मलूक दास ने दोहा ही बना डाला —

"अजगर करें न चाकरी पंछी करें न काम,
दास मलूका कहि गये सबके दाता राम।"

हरिश्चन्द्र का कहना है कि सब शक्तियों का मूल धर्म है अतः सबसे पहले धर्म की उन्नति करना चाहिए। क्योंकि धर्मनीति और समाजनीति आपस में दूध और पानी की तरह मिले हुये हैं।

"मैं नास्तिक क्यों हूँ।" शाहीद भगतसिंह जो भारत के एक महानतम स्वाधीनता-संग्रामी तथा क्रान्तिकारी समाजवादी तो थे ही इस देश के प्रारम्भिक मार्क्सवादी चिंतक और सिद्धान्तकार भी थे। भगतसिंह ने फाँसी की सजा की प्रतीक्षा करते हुए जेल में बैठकर "व्हाई0आई0एम0एन0एथी स्ट" शीर्षक लेख लिखा। उसका हिन्दी रूपान्तर रमेश उपाध्याय ने यहाँ प्रस्तुत किया है। भगतसिंह कहते हैं कि, "जब कोई मनुष्य पाप या अपराध करने चलता है तो आपका सर्वशक्तिमान ईश्वर उसे रोकता क्यों नहीं है। उसके लिए तो यह बहुत ही आसान काम होगा। ईश्वर की उत्पत्ति के बारे में मेरा विचार है कि मनुष्य ने जब अपनी कमियों और कमजोरियों पर विचार करते हुए अपनी सीमाओं का अहसास किया तो मनुष्य को तमाम कठिन परिस्थितियों

का साहसपूर्वक सामना करने और तमाम खतरों के साथ वीरतापूर्वक जूझने की प्रेरणा देने वाली तथा सुख समृद्धि के दिनों में उसे उच्छ्वसित हो जाने से रोकने और नियन्त्रित करने वाली सत्ता के रूप में ईश्वर की कल्पना की। भगतसिंह कहते हैं कि यह अहम्मन्यता नहीं है मेरे सोचने का तरीका है। जिसने मुझे नास्तिक बना दिया है। मैं नहीं जानता कि ईश्वर में विश्वास करने और रोज प्रार्थना करने से जिसे मैं आदमी का सबसे स्वार्थपूर्ण और घटिया काम समझता हूँ—मुझे राहत मिली है या मेरी हालत और भी बदतर हुयी होती। मैंने उन नास्तिकों के बारे में पढ़ा है जिन्होंने साहसपूर्वक सारी मुसीबतों का सामना किया है। उन्हीं की तरह मैं भी कोशिश कर रहा हूँ कि फांसी के तख्ते पर भी मर्द की तरह सिर ऊँचा किये खड़ा रहूँ।

"पूँजीवादी समाज और प्रेस" 1946 में "जनवाणी" में प्रकाशित आचार्य नरेन्द्र देव का प्रेस की आजादी विषय पर लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण लेख है। वे लिखते हैं कि लोकतंत्र की रक्षा और उन्नति के लिए प्रेस की स्वतंत्रता आवश्यक है। प्रेस का मुख्य कार्य नागरिकों को राजनीतिक शिक्षा देना है जिससे वे अपने वोट का उचित उपयोग कर सकें। आरम्भ में राजनीतिक शिक्षा देने के लिए ही प्रायः राजनीतिक पत्रों का प्रकाशन हुआ करता था। प्रकाशनों में व्यापार बुद्धि नहीं थी। किन्तु आज कल बिना अच्छी पूँजी के दैनिक पत्र नहीं चल सकते। पूँजीपतियों ने दैनिक पत्रों का स्टैंडर्ड काफी ऊँचा कर दिया है। उनमें समाचार और लेख पर्याप्त मात्रा में रहते हैं, मैगजीन सैखान भी रहता है। यदि पुराने पत्र अपने स्टैंडर्ड को ऊँचा न करें और इन विशेषताओं को न अपनायें तो वे चल नहीं सकते। पूँजी की कमी के कारण वे ऐसा नहीं कर पाते हैं और इसीलिए वे पूँजीवादियों के हाथ में चले जाते हैं।

"स्त्रियों की शिक्षा" विषय पर स्वामी विवेकानन्द और उनके शिष्य की बातचीत को प्रस्तुत किया गया है, जो 1901 में बेलुड़ मठ में हुयी थी। स्वामी जी का मानना है कि किसी भी शास्त्र में ऐसा नहीं लिखा गया है कि स्त्रियाँ ज्ञान-भक्ति की अधिकारिणी नहीं हैं। भारत का

अधःपतन वहीं से शुरू हुआ जब ब्राह्मणों ने ब्राह्मणेतर जातियों तथा स्त्रियों से यह अधिकार छीन लिया। लड़कियों के लिए गाँव-गाँव पाठशालाएँ खोलकर उन्हें शिक्षित करना चाहिए क्योंकि स्त्रियाँ जब शिक्षित होंगीं तभी तो उनकी संतानों द्वारा देश का मुख उज्ज्वल होगा और देश में विद्या, ज्ञान शक्ति भक्ति आयेगी।

§4§ जो लिखा जा रहा है :

"यथार्थवादी लेखन की समस्याएं और आज का उपन्यास" विषय पर जानकी प्रसाद शर्मा लिखते हैं कि आजादी के बाद उपन्यास की तीन प्रवृत्तियाँ सामने आती हैं।

1. इन उपन्यासों में जहाँ एक ओर देश की आंतरिक परिस्थितियों के बीच उभरते हुये पूँजीवाद के विरुद्ध सामासिक चेतना की व्याप्ति है वहीं दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के प्रभाव स्वरूप बन रही शीत युद्धीय परिस्थिति का विश्लेषण भी मिलता है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत यशपाल, रागेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त नागार्जुन के उपन्यासों को लिया जा सकता है।
2. दूसरी प्रवृत्ति के उपन्यासों का मुख्य स्वर है कि शोषण की प्रक्रिया वास्तव में एक अमानवीय प्रक्रिया है लेकिन सामाजिक ढाँचों में आमूल परिवर्तन किये बिना भी इस प्रक्रिया को दुखी जीवन के सहानुभूतिपूर्ण चित्रण के जरिये कम या खत्म किया जा सकता है। ये उपन्यास बुनियादी तौर पर सामाजिक यथार्थ के कुछ पहलुओं को छूते हैं और सामाजिक चेतना के संगठन के लिए एक जमीन तैयार करते हैं। यह और बात है कि इनमें वर्ग चेतना का उतना सुधरा और स्पष्ट रूप प्राप्त नहीं होता। रेणु के उपन्यासों के जरिये इन मुद्दों को साफ तौर पर समझा जा सकता है।

3. तीसरी प्रवृत्ति है, आत्मसाक्षात्कार के बहाने वर्गीय विचारधारा और मूल्यों से मुक्ति के लिए विद्रोह पाया जाता है ।

कथा साहित्य के क्षेत्र में आज स्थिति यह है कि उपन्यास की तुलना में कहानी में सामाजिक अन्तर्विरोधों का सहसा अधिक है । आज का जनवादी लेखक आन्दोलन की तीव्रता के इस दौर में कहानी को अपनी अभिव्यक्ति से ज्यादा अनुकूल पा रहा है । पिछले दिनों प्रकाशित उपन्यासों में से विनोद कुमार शुक्ल का "नौकर की कमीज" एक उपन्यास है जिसमें मध्यवर्गीय परिवेश की अस्तित्ववादी व्याख्या मिलती है । उसकी मध्यवर्गीय विचार भूमि यहाँ गायब है । इस कारण न तो मध्यवर्गीय समस्याओं और परिवेश में अन्तरक्रिया की स्थिति मिलती है और न समस्याओं के मूलभूत कारणों तक लेखक हमें ले जा पाता है । विचारधारात्मक अनुशासन के अभाव में इस उपन्यास की रचना प्रक्रिया में बिखराव की स्थिति आ गयी है ।

"जनवादी कहानी : दोहरी जिम्मेदारी" विषय पर राजकुमार शर्मा लिखते हैं कि इस नये जनवादी दौर के कहानीकारों ने अपनी रचना प्रक्रिया को मुख्यतः इन बिन्दुओं पर केन्द्रित किया : अपने समय और जीवन के सारभूत मुद्दों को केन्द्रीय विषय के रूप में उठाना, मुख्य अन्तर्विरोधों की रोशनी में यथार्थ के विभिन्न स्तरों की सर्वांगीण मार्मिक पहचान अपने भीतर के निम्न-वर्गीय संस्कारों तथा विचारधारा के यांत्रिक रूपों से निरन्तर संघर्ष करते हुए दृष्टि को सही बनाये रखने की चेष्टा और संघर्षरत तबकों से गहरा आत्मीय लगाव । इस दौर की कहानी अपनी पूरी रचनात्मक शक्ति के साथ दोहरी जिम्मेदारी निभा रही है । एक ओर तो शासक वर्गीय मूल्यों के खिलाफ आलोचनात्मक वातावरण बनाकर अपनी और सहयोगी वर्ग की मानसिकता में उसकी अमूर्त घुसपैठ को रोक रही है तथा दूसरी तरफ मजदूर और किसान जीवन की वास्तविकताओं से घनिष्ट रूप में जुड़कर सामाजिक परिवर्तन की नेतृत्वकारी शक्ति के रूप में उनके संघर्षों के वस्तुपरक चित्रण द्वारा सांस्कृतिक संघर्ष की प्रक्रिया को आगे बढ़ा रही है ।

“राष्ट्रीय राजमार्ग : जनवादी कथा लेखन में एक नया बदलाव”

विषय पर ओमप्रकाश ग्रेवाल लिखते हैं कि राष्ट्रीय राजमार्ग में अपने कथावस्तु के अनुरूप ऐसे शिल्प का प्रयोग किया गया है जहाँ प्रत्येक छोटी बड़ी घटना बिम्ब केन्द्रीय रूपक सब कुछ स्वतः स्फूर्त न होकर सोच-समझकर निर्मित किया हुआ दिखाई देगा। जनवादी लेखक के एक नये पड़ाव को रेखांकित करने वाला यह वस्तु और शिल्प दोनों में ही एक महत्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन आ गया है।

§5§ परदे पर :

“हीरक राजा के देश में प्रकृतवाद का चक्र” शीर्षक से रमेशा उपाध्याय ने सत्यजित राय की बंगाली फिल्म “हीरक राजार देशो” की समीक्षा प्रस्तुत की है। वे लिखते हैं कि जनजीवन को हू-ब-हू परदे पर उतारने की कथा के मास्टर तो सत्यजित राय माने जाते हैं। हिन्दी में स्व० रवीन्द्र धर्मराज की पहली और अन्तिम फिल्म चक्र बच्चों के लिए बनायी गयी हल्की-फुलकी हास्य प्रधान फिल्म और हीरक राजार देशो केवल वयस्कों के लिए निर्मित गुरु गम्भीर फिल्म चक्र की तुलना शायद लोगों को अटपटी लगे मगर तुलना का एक कारण है। दोनों फिल्में अपने-अपने ढंग से एक सड़ी हुयी समाज व्यवस्था को बदल कर नये समाज की रचना की जरूरत का संकेत करती हैं। हीरक राजार देशो में एक काल्पनिक राज्य के काल्पनिक राजा को पैटिसी खड़ी करके यह उद्देश्य पूरा किया गया है तो चक्र में बम्बई की एक झोपड़ पट्टी के रहने वाले दरिद्र, उत्पीड़ित और अपराधी लोगों के जीवन को हू-ब-हू परदे पर उतारने की कोशिश करके। फिल्मों की कथा तथा कथा के आधार पर समीक्षा करते हुये वे कहते हैं कि सत्यजित जैसे फिल्मकार आज प्रकृतवाद और आलोचनात्मक यथार्थ की सीमाओं को समझकर समाजवादी यथार्थवाद की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं, यह यथार्थवादी साहित्य और कला एवं हमारे जनवादी आन्दोलन के विकास में सहायक एक स्वागत योग्य स्थिति है।

प्रेमचंद की कहानी "सद्गति" पर सत्यजीतराय ने दूरदर्शन के लिए एक छोटी सी फिल्म "सद्गति" बनायी। जो 25 अप्रैल 1982 को दिल्ली दूरदर्शन पर दिखाई गयी। सद्गति एक अच्छी फिल्म है और यथार्थ को जितना भी जिस रूप में भी सामने लाती है, उसे देखा या दिखाया जाना चाहिए। यह फिल्म विमलराय की "सुजाता" और अछूतों पर बनायी गयी और बहुत सी फिल्मों की तरह सामाजिक अंतर्विरोधों पर लीपापोती नहीं करती बल्कि उन्हें उजागर करती है और इस समाज की ऊँच नीच और छुआ-छूतवाली व्यवस्था के प्रति गहरी घृणा और रोष से दर्शक को भर देती है।

"उमरावजान" की कला और "बाजार" का यथार्थ शीर्षक में "उमरावजान" मिर्जा हादी सूतवा के उर्दू उपन्यास "उमरावजान" अदा" पर आधारित फिल्म है। इसमें नाचने गाने का पेशा करने वाली एक तवायफ को केन्द्र में रखकर अवध के नवाबों को परदे पर उतारा गया है। रमेश उपाध्याय लिखते हैं कि "उमरावजान" देवदास की चंद्रमुखी से लेकर पाकीजा की नायिका तक जितनी भी तवायफें हिन्दी फिल्मों में आयी हैं उनमें भिन्न है क्योंकि वह सिर्फ वेश्या या सिर्फ औरत नहीं है। जो अपने जीवन के नरक से निकलने के लिए किसी पुरुष के प्रेम में अपना पेशा छोड़कर चल दे या जिसका उद्धार करने के लिए कोई पुरुष आदर्शवादी रूमानीपन के साथ उसे पत्नी बनाने की चेष्टा करे। वह एक कलाकार के रूप में और उससे भी अधिक एक नागरिक या एक सामाजिक व्यक्ति के रूप में अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व के प्रति सामाजिक न्याय की तलाश करती हुयी औरत है जो सामंती समाज में उसे कहीं नहीं मिलता।

"उमरावजान" और बाजार दोनों फिल्में सामाजिक यथार्थ को जनवादी दृष्टि से हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। इन दोनों फिल्मों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके पात्र अपनी वर्गीय भूमिका निभाते हैं। हालांकि अपनी अनेक सीमाओं के चलते वे समाज व्यवस्था को बदलने के लिए कहीं कोई सामूहिक संघर्ष करते दिखाई नहीं देते, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि यहाँ वर्ग संघर्ष नहीं है। वह है लेकिन बहुत सूक्ष्म स्तर पर है और वहाँ प्रत्यक्ष होता

है जहाँ कोमल मानवीय भावनाएं कठोर सामाजिक सम्बन्धों से टकराती हैं और सामाजिक यथार्थ को बड़े अस्तरदार तरीके से हमारे सामने खोल देती है। यही कारण है कि ये फिल्में इतनी प्रभावशाली बन पायी हैं।

"गांधी : नीति और न्याय" शीर्षक समीक्षा रिचर्ड स्टनबरो की फिल्म "गांधी" इस समय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक सबसे ज्यादा चर्चित फिल्म है। इस फिल्म की समीक्षा में रमेश उपाध्याय लिखते हैं कि जहाँ एक तरफ यह फिल्म जगह-जगह पुरस्कार और प्रशंसा प्राप्त कर रही है वहीं दूसरी तरफ इसकी तीखी आलोचनाएं हो रही हैं। प्रशंसकों का कहना है कि यह समकालीन इतिहास के आधार पर यथार्थवादी ढंग से बनायी गयी एक महान कलात्मक फिल्म है, तो आलोचकों का कहना है कि इसमें इतिहास के साथ न्याय नहीं किया गया है। गांधी जी के जीवन की घटनाओं और उनके संपर्क में आये व्यक्तियों को इसमें नहीं दिखाया गया है। सारतः वे कहते हैं कि गांधी जी के जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह थी कि जिस जनता को उन्होंने आजादी की लड़ाई में बार-बार अनशन वगैरह करके हिंसक होने से रोका, उसे वे साम्प्रदायिक हिंसा करने से नहीं रोक सके और अन्ततः स्वयं उसी हिंसा के शिकार हुए, गांधी फिल्म की विडम्बना यह है कि यह जिन सच्चाईयों से लोगों को विमुख करना चाहती है उन्हीं की ओर उन्मुख करने वाली फिल्म बन गयी है। यह भी कह सकते हैं कि यह फिल्म अपने अंतर्निहित उद्देश्य में असफल होकर सफल हुयी है।

पंचम अध्याय

"रमेशा उपाध्याय : व्यक्तित्व और कृतित्व"

रमेशा उपाध्याय का पहले का नाम रमेशा चन्द्र शर्मा था । इनका जन्म 1 मार्च 1942 को उत्तर प्रदेश के एटा जिले में कासगंज के निकट बढारी वैस नामक गाँव में हुआ । इनकी माता श्रीमती विद्यावती शर्मा सुशिक्षित गृहिणी तथा पिता पं० श्री राम शर्मा संस्कृत के विद्वान और विभिन्न संस्कृत पाठशालाओं के अध्यापक रहे ।

आपकी हाई स्कूल तक की शिक्षा कासगंज में, इंटरमीडियेट बुलन्दशहर से । बी०ए० दिल्ली से §दिल्ली विश्वविद्यालय से § एम०ए० अजमेर से §राजस्थान विश्वविद्यालय से § और पी०एच०डी० पुनः दिल्ली विश्वविद्यालय से किया ।

सन् 1956 में हाईस्कूल पास करने के बाद ही अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश की । 1957 में दिल्ली से पेपर प्रिंटिंग में एक वर्ष का डिप्लोमा कोर्स करने के बाद दिल्ली कासगंज, अजमेर, जयपुर, जोधपुर के कई प्रेसों में काम किया । सम्पादक बनने के लिए सम्पादन कला विशारद की परीक्षा पास की । चौदह वर्ष की उम्र में ही घर से निकलकर मेहनत-मजदूरी करते हुए शहर दर-शहर भटक कर जीवन के अनुभव प्राप्त किये और अध्ययन जारी रखा ।

आपको लिखने का शौक लड़कपन से ही था परन्तु विधिवत लेखन 1962 से शुरू हुआ । पहली कहानी अजमेर से निकलने वाली एक प्रमुख साहित्यिक पत्रिका "लहर" के सितम्बर 1962 के अंक में छपी ।

सन् 1964 से 1973 तक कई नौकरियाँ कीं और छोड़ी । बीच-बीच में स्वतन्त्र लेखन से जीविकोपार्जन किया, जिसमें अपने मौलिक सर्जनात्मक लेखन के अलावा विभिन्न विषयों पर लेख लिखे अनुवाद §अंग्रेजी और गुजराती से § किये, आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए मौलिक नाटक लिखे और देश-

विदेशों की प्रसिद्ध कथाकृतियों के नाट्य रूपांतर किये। वैज्ञानिक विषयों पर लिखा और ऊर्जा नामक विज्ञान पत्रिका तथा पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए अजमेर में ऊर्जा प्रकाशन की स्थापना की, किन्तु धन के अभाव में यह योजना विफल हो गयी। अजमेर में १९६० में पढ़ते समय सेम्युएल वैकेट के नाटक "वेटिंग फार गोदो" का भारतीय रूपान्तर "प्रतीक्षा और प्रतीक्षा" किया और अपने ही निर्देशन में मंचित किया। बम्बई में पैसा कमाने के लिए कुछ गुमनामी फिल्मी लेखन भी किया। बिन्दु भास्कर, उत्पल कुमार और सरला सुन्दरम् के छद्म नामों से भी बहुत सी चीजें लिखीं।

सन् १९६४-६५ में "सरिता" और "मुक्ता" के उप सम्पादक, १९६६-६७ में "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में उप सम्पादक, १९७० में शंकर वीकली में तथा १९६९ में "नवनीत" हिन्दी डाइजैस्ट में सहायक सम्पादक। १९७४-७५ में आनन्द प्रकाश और राजकुमार शर्मा के साथ "युग परिवोध" का और सन् १९८० से ८४ तक "कथन" का सम्पादन किया जिसके २० अंक निकले।

आप अजमेर से १९६० करते समय ही १९६९ से दिल्ली की सुधा शर्मा से प्रेम विवाह किया। सुधा जी इतिहास की अध्यापिका रही हैं और अब दिल्ली के एक स्कूल में वाइस प्रिंसिपल हैं। आपकी दो बेटी प्रज्ञा और संज्ञा तथा एक बेटा अंकित हैं।

रमेश उपाध्याय १९७३ में बादां के प्रगतिशील लेखक सम्मेलन में हिस्सेदारी की और वहाँ से लौट कर दिल्ली में "जनवादी लेखक मंच" की स्थापना करके अपने संयोजन में कई साहित्यिक गोष्ठियाँ करायीं। जनवादी लेखक संघ के निर्माण में "कथन" पत्रिका के जरिए महत्वपूर्ण योगदान दिया।

आपके दो कहानी संग्रह उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से "नदी के साथ" "किसी देश के किसी शहर में" दिल्ली की हिन्दी अकादमी से पुरस्कृत किये गये।

आपकी प्रकाशित पुस्तकें :

उपन्यास : चक्रवर्त सुष्मा पुस्तकालय दिल्ली १९६७, दंडी पक्षर

प्रकाशन, दिल्ली 1969॥ स्वप्नजीवी ॥नेशनल
पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 1971॥ हरे फूल की खुआबू
॥राजकमल प्रकाशन दिल्ली 1971॥

कहानी संग्रह :

जमी हुई झील ॥अक्षर प्रकाशन दिल्ली 1969॥
शेष इतिहास ॥आर्य बुक डिपो दिल्ली 1973 दूसरा सं० 1990॥
नदी के साथ ॥धर्मपाल एण्ड संस, दिल्ली 1976 सामायिक प्रकाशन
दिल्ली 1985॥ चतुर्दिक ॥ पंकज प्रकाशन दिल्ली 1980॥
पैदल अधिरे में ॥सामयिक प्रकाशन, दिल्ली 1981, दूसरा संस्करण
1984॥ बदलाव से पहले ॥ धरती प्रकाशन बीकानेर 1981॥
राष्ट्रीय राजमार्ग ॥सामयिक प्रकाशन दिल्ली 1984॥
किसी देश के किसी शहर में ॥वाणी प्रकाशन दिल्ली 1987॥
कहाँ हो प्यारे लाल ॥सचिन प्रकाशन दिल्ली 1991॥

नाटक :

पेपरवेट ॥ पराग प्रकाशन दिल्ली 1981 ॥
सफाई चालू है ॥आनन्द प्रकाश के साथ लिखा उन्हीं के द्वारा
प्रकाशित 1974॥
बच्चों की अदालत ॥ धरती प्रकाशन बीकानेर 1981 ॥
भारत भाग्य विधाता ॥लिपि प्रकाश दिल्ली 1990 ॥

आलोचना :

कम्युनिस्ट नैतिकता ॥जनभाषा प्रकाशन जोधपुर 1974॥

अनुवाद :

सोनल छाया ॥शिवकुमार जोशी का उपन्यास, गुजराती में
नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 1968॥

कंचुकी वध § शिवकुमार जोशी का उपन्यास, गुजराती से, ऊर्जा प्रकाशन
अजमेर 1969 §

गुजराती कहानियाँ § यशवंत शुक्ल और अनिरुद्ध वलभट्ट द्वारा संपादित
गुजराती से नेशनल बुक ट्रस्ट दिल्ली 1975 §

धूप छांह § चुन्नीलाल मड़िया का उपन्यास, गुजराती से नेशनल बुक ट्रस्ट
दिल्ली 1976 §

जनता का नया साहित्य § चाऊ इन लाई, कुओ यो जो आदि चार चीनी
लेखकों के लेखों का संकलन, अंग्रेजी से पीपुल्स लिटरेरी दिल्ली
1983 §

कला की जरूरत § अर्स्ट फिक्शन की प्रसिद्ध पुस्तक अंग्रेजी से, राजकमल प्रकाशन
दिल्ली 1990 §

आजकल आप एक उपन्यास लिखने में व्यस्त हैं। भविष्य में कई
पुस्तकें लिखने की योजना आपकी है जिसमें से एक कहानी समीक्षा से
सम्बन्धित होगी। आप "जनवादी लेखक संघ" साहित्यिक मंच से सम्बद्ध हैं।
आपका मानना है कि लेखक को अपना रास्ता खुद ही खोजना और बनाना
चाहिए लेखन के स्तर पर अनुगमन या अनुकरण नहीं करना चाहिए।

षष्ठम अध्याय

"कथन" में प्रकाशित विविध विधाओं की रचनानुक्रमणिका

कहानी
=====

कहानीकार	कहानियाँ	अंक	पृ०सं०
अरविन्द गुप्त	पक्षधर	सितम्बर, अक्टूबर 1980	5
अब्दुल विस्मिल्लाह	पुण्यभोज	मई-जून 1982	21
अशाफाक	रोशानी	मई-जून 1981	27
"	लोक यमलोक	नवम्बर दिसम्बर 1981	9
"	उनकी राह	जुलाई-अगस्त 1982	14
असगर वजाहत	दिल्ली पहुँचना है	जुलाई अगस्त 1981	9
अरविन्द कुमार	तीसरी आँख	जुलाई-अगस्त सितम्बर	
	का दर्द	1982	19
अभय	उत्तरार्द्ध	जुलाई-अगस्त सितम्बर 1982	11
अजय श्रीवास्तव	सपनों का गुच्छा	जुलाई-अगस्त-सितम्बर 1983	27
अरुण प्रकाश	कहानी नहीं	मई जून 1982	21
इसराइल	दर्द का तबादला	मार्च-अप्रैल 1981	27
उषा वागेश्वरी	साथ	सितम्बर-अक्टूबर 1980	13
श्री नाथ	अपने हिस्से	नवंबर-दिसम्बर	15
	की आग	1981	
किरन वेरी	हड़ताल	नवम्बर-दिसम्बर 1982	15

कुदन सिंह परिवार	अपने लोग	अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर 1983	17
चेतना	मजबूत होते हाथ	जनवरी-फरवरी 1983	19
चंद्रिका	तिलसिला	मार्च-अप्रैल 1981	29
दयानन्द अरोड़ा	आज का बुद्ध	मार्च-अप्रैल 1981	38
नमिता सिंह	क्रॉसिंग	नवम्बर-दिसम्बर 1980	23
"	सैलाव	सितम्बर-अक्टूबर 1981	7
नरेन्द्र	दखल	मार्च-अप्रैल 1981	9
नरेन्द्र कुमार	अपनी जमीन पर	मार्च-अप्रैल 1981	38
नीरज सिंह	अपनों के बीच	जनवरी-फरवरी 1982	9
न्यून कांग हुआन	खेल भावना	जुलाई-अगस्त 1980	29
प्रेमेश चौधरी	मोड़ के आगे	सितम्बर-अक्टूबर 1982	15
प्रमोद गारेकर	सिमटते धुव	जनवरी-फरवरी 1983	7
प्रभा सक्सेना	धारा के विरुद्ध	जनवरी-फरवरी 1983	13
पृथ्वी राज अरोड़ा	प्रभुकृपा	नवम्बर-दिसम्बर 1981	63
पुन्नी सिंह यादव	जंगल का कोढ़	जुलाई-अगस्त 1981	13
भीष्म साहनी	सड़क पर	जुलाई-अगस्त 1980	4
"	जहूर वख्ता	मार्च-अप्रैल 1982	5
"	संभल के वाबू	जुलाई-अगस्त-सितम्बर 1983	9
भैरव गुप्त	टिड्डे	नवम्बर-दिसम्बर 1980	4
"	हनुमान	सितम्बर-अक्टूबर 1982	7
महेशा कटारे	खुदा बिकाऊ है	मार्च-अप्रैल 1983	13
मनोहर काजल	श्रद्धोजलि	जुलाई-अगस्त 1981	19
योगेन्द्र दवे	विश्वास	नवम्बर-दिसम्बर 1982	11
रमेशा वत्तरा	फाटक	जुलाई-अगस्त 1980	13
"	दूसरी मौत	मई-जून 1983	13
"	कत्ल की रात	मार्च-अप्रैल 1982	11

रमेश उपाध्याय	प्रौढ़पाठशाला	नवम्बर-दिसम्बर 1980	7
"	राष्ट्रीय राजमार्ग	मई-जून 1982	5
रमाकान्त	वालहठ	जनवरी-फरवरी 1981	7
राजेश कुमार	मदारी	जनवरी-फरवरी 1981	13
रामेश्वर उपाध्याय	एक ही रास्ता	मार्च-अप्रैल 1981	9
राम किशोर	पीछा	मई-जून 1981	17
"	परवाना	मई-जून 1982	29
लेव तोल्स्तोय	तीन सवाल	सितम्बर-अक्टूबर 1980	28
न्यू शून	सुखी परिवार	मई-जून 1981	33
विजेन्द्र अनिल	दूसरी राह	जनवरी-फरवरी 1981	13
विष्णु प्रभाकर	कितने जेव कतरे	जुलाई-अगस्त 1982	7
विनायक कराडे	कुहराम	सितम्बर-अक्टूबर 1982	15
सुरेशा काटक	एक वनिहार	जुलाई-अगस्त 1980	21
	का आत्मनिवेदन		
सुरेशा काटक	दूसरा कदम	मार्च-अप्रैल 1981	13
"	पपिया	सितम्बर-अक्टूबर 1981	15
"	मोहभंग	मार्च-अप्रैल 1983	7
सुरेन्द्र मदन	तंबू	सितम्बर-अक्टूबर 1980	15
"	जमीन	मई-जून 1981	5
स्वयं प्रकाश	बस	नवम्बर-दिसम्बर 1980	19
"	वर्डे	मई-जून 1983	23
सहीराम	शिकस्त	जनवरी-फरवरी 1981	21
सुविमल मिश्र	बहत्तर के दिसम्बर		
	की एक शाम	जनवरी-फरवरी 1981	27

सुरज पालीवाल	टीका प्रधान	जनवरी-फरवरी 1982	20
सिरिल मैथ्यू	मातमीचाद	मार्च-अप्रैल 1983	16
सन्तोष चौधरी	कडवे नीम की		
	मीठी गंध	मई-जून 1983	29
शौलेन्द्र श्रीवास्तव	दुहाई सरकार	अक्टूबर-नवम्बर 1983	9
शेखर जोशी	बाढ़	जुलाई-अगस्त 1980	8
हरिहर वैष्णव	सिलसिला	सितम्बर-अक्टूबर 1981	19
हवीब फैफ़ी	जमीन	अक्टूबर-नवम्बर दिसम्बर 1983	3
हुआंग जुई युन	तीन बोधकथारं	नवम्बर-दिसम्बर 1980	29

कविता
=====

कवि	कविताएं	अंक	पृ०सं०
अजय तिवारी	तमाशा	जनवरी-फरवरी 1981	12
"	वह अपने बेटे		
	के बारे में सोच		
	रही है	सितम्बर-अक्टूबर 1981	13
"	तुम्हारी करुणा	मई-जून 1983	27
अश्वघोष	दो गीत	जनवरी-फरवरी 1981	26
"	अश्वघोष की		
	कविता	सितम्बर-अक्टूबर 1981	40
"	अश्वघोष की		
	साखी	मार्च-अप्रैल 1983	38

अक्षय उपाध्याय	दो कविताएं	जनवरी-फरवरी 1981	38
अक्षय उपाध्याय	भद्रजन सोते हैं	मार्च-अप्रैल 1982	10
अनिल कुमार गंगल	दो कविताएं	नवंबर-दिसंबर 1981	31
अनिल कुमार गंगल	एक बस्ती की कथा	जुलाई-अगस्त-सितंबर 1983	24
अलीम	दो कविताएं	सितंबर-अक्टूबर 1981	18
अमित सिन्हा	पपेरा बुखार में है	मई-जून 1982	17
अंबिका दत्त	मैं उसे छूता हूँ	सितंबर-अक्टूबर 1982	29
अजय वर्मा	ईरान के बच्चे	नवंबर-दिसंबर 1982	17
अत्रि कुमार ऋषि	गीत	मार्च-अप्रैल 1983	21
अश्विनी कुमार चौधरी	चावल के दाने	जुलाई-अगस्त-सितंबर 1983	64
अरुण कमल श्याम	विमल अरुण कमल और श्याम विमल की कविताएं	मार्च-अप्रैल 1983	11
आनन्द प्रकाश	हरिजन दहन-एक बस्ती की कहानी	सितंबर-अक्टूबर 1980	22
इवान वजोव	दो कविताएँ	सितंबर-अक्टूबर 1982	14
इल्वार रब्बी	मेरा घर	नवंबर-दिसंबर 1981	14
ईश्वर रात्रे	कविता	मार्च-अप्रैल 1982	9
उदय प्रकाश	हाथ	मार्च-अप्रैल 1982	21
उमेश्वर दयाल, जय	उमेश्वर दयाल जय		
नारायण मेहता	नारायण मेहता		
और बनाफर चन्द्र	और बनाफर चन्द्र		
	की कविताएं	मार्च-अप्रैल 1983	26
श्री चन्द्र	चार कविताएं	सितंबर-अक्टूबर 1981	39
कुलदीप सलिल	धरती की बात	जुलाई-अगस्त 1980	27

कुलदीप सलिल	अंधी भड़ी	नवंबर दिसंबर 1980	48
"	घर की बात	सितंबर अक्टूबर 1982	29
कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह	दो कविताएं	मई-जून 1981	15
कृष्ण वक्षी	गंगाराम	जुलाई-अगस्त 1982	13
किरणा वाडीकर	बूढ़े पीपल की आत्म-कथा	जुलाई अगस्त सितंबर 1983	26
कैफी आजमी	वह स्मनी	जुलाई अगस्त सितंबर 1983	35
गंगेश गुंजन	घर की कहानी	जुलाई-अगस्त 1982	13
चन्द्रकांत देवताले	प्रहसन प्रारम्भ होने के पूर्व ही	सितंबर अक्टूबर 1980	12
चन्द्रेश	इमारत	जुलाई-अगस्त 1981	18
चंद्रशेखर	शब्दों का उच्चारण	अक्टूबर-नवंबर दिसंबर 1983	60
जुगमंदिर तायल	दूब	सितंबर-अक्टूबर 1980	14
जयनारायण मेहता	फुलफुसाहटें	जुलाई-अगस्त 1981	34
जगदीश श्रीवास्तव	जगदीश श्रीवास्तव के गीत	सितंबर अक्टूबर 1981	40
"	जलते हुए सवाल	मार्च अप्रैल 1982	41
जुगमंदिर तायल	प्रभु से कुछ सवाल	नवंबर दिसंबर 1981	6
जोश मलेहाबादी	निजामे नौ	मई-जून 1982	4
जेम्स मैथ्यूज	कहा जाता है	जुलाई-अगस्त सितंबर 1983	36
तरसेम गुजराल	चिड़िया	जनवरी फरवरी 1981	26
तैयब हुसैन पी डित	भोजपुरी गीत	अक्टूबर नवंबर दिसंबर 1983	32
देवभूषण	ये हाथ	मई-जून 1983	32
नागार्जुन	दो कविताएं	जुलाई अगस्त 1981	7
"	बड़ी मछली छोटी मछली	जनवरी फरवरी 1982	5
	बड़ी म०		

नागार्जुन	दो कविताएं	मई जून 1983	11
"	तेरी खोपड़ी के अन्दर	जुलाई अगस्त सितंबर 1983	7
"	नदियां बदला ले ही		
	लेंगी	जुलाई अगस्त 1981	7
नंद भारद्वाज	झील पर हावी रात	जनवरी फरवरी 1981	19
"	मदारी और बन्दर	मई जून 1983	31
नरेन्द्र सौतेला	तीन कविताएं	मार्च अप्रैल 1981	20
नचिकेता	कृष्ण पक्षी और		
	ब्रजमोहन के जनगीत	जनवरी फरवरी 1981	32
नरेन्द्र जैन	सफर	मार्च अप्रैल 1982	42
नन्द भारद्वाज	सहने की तरह दें	मई-जून 1983	21
प्रदीप सक्सेना	उमस	जुलाई अगस्त 1980	11
"	दो दिन	जनवरी फरवरी 1981	23
पारस अरोड़ा	ले यह माचित ले	जुलाई अगस्त 1980	32
परमिंदर जीत	मौसम फिर रंगीन है	सितंबर अक्टूबर 1980	32
पाब्लो नेस्टा	स्वयं यंत्र	मार्च अप्रैल 1981	27
प्रतिमा सिंह	मैं यहां गाती हूँ	जनवरी फरवरी 1983	30
प्रयास जोशी	चिमनी माचित	जनवरी फरवरी 1982	40
पंकज सिंह	चार कविताएं	अक्टूबर नवंबर दिसंबर 1983	16
फिराक गोरखपुरी	जिन्दगी की ललकार	मई जून 1982	4
बद्री नारायण	माँ	मई-जून 1982	13
"	राम रतन भैया	मार्च अप्रैल 1983	10
"	पौधे	जनवरी फरवरी 1983	13
बृहमाशंकर पाण्डे	जमीन और जमीन	मई-जून 1981	20
"	सोने की चिड़िया	जनवरी फरवरी 1983	12
"	दो कविताएं	जनवरी फरवरी 1982	8

बी० आर० प्रजापति	मेरे गीत	मार्च-अप्रैल 1981	28
ब्रजमोहन	इकबाल का गीत	जुलाई अगस्त 1982	6
मनमोहन	तीन कविताएं	जुलाई अगस्त 1981	17
मनसोहन	पिताओं का कोरस	मई-जून 1982	19
मोहदत्त	एक गजल	अक्टूबर नवंबर दिसंबर 1983	15
मनोज मिश्र स्नेह भारती	मनोज मिश्र और स्नेह भारती की कविताएं	सितंबर अक्टूबर 1981	50
महेश दर्पणा देवदीय	महेश दर्पणा और देवदीय की कविताएं	सितंबर अक्टूबर 1981	23
मुकेश मिश्र सन्तोष चौबे	मुकेश मिश्र और सन्तोष चौबे की कविताएं	जनवरी फरवरी 1982	19
मानबहादुर सिंह और महावीर	मानबहादुर सिंह और महावीर की कविताएं	मई-जून 1983	28
यादवेन्द्र	दो कविताएं	मार्च अप्रैल 1982	19
रामकुमार सैनी	दो कविताएं	मई-जून 1981	31
रमेश रंजक	तीन कविताएं	जुलाई अगस्त 1981	8
राजेन्द्र प्रसाद सिंह	विद्यालय के बाहर	जुलाई अगस्त 1981	33
रमन मिश्र	दो बहनें	जनवरी फरवरी 1983	11
रामजीत	मुझे इंतजार है	मार्च अप्रैल 1982	9
राजेन्द्र शर्मा	एक युवा मित्र कवि को	मार्च अप्रैल 1982	23
विजय बहादुर सिंह	चार कविताएं	नवंबर दिसंबर 1982	8
"	दो कविताएं	मई-जून 1981	20
विजेन्द्र	तीन कविताएं	मार्च अप्रैल 1981	12
विमल कुमार	जड़	नवंबर दिसंबर 1982	14
विश्रांत वसिष्ठ	उम्मीद	नवंबर दिसंबर 1982	18

सोमदत्त	कितना सहज कितना कठिन	नवंबर दिसंबर 1980	27
"	बाध : तरक्की के पार्क में	मार्च अप्रैल 1982	42
"	कागज स्याही वाले घोड़े	जुलाई अगस्त सितंबर 1983	17
सुरेश अंतर	वारिश आदमी के अन्दर हो या बाहर	मई जून 1983	20
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	"भारत भाग्य विधाता" के गीत	अक्टूबर नवंबर दिसंबर 1983	7
संजय तिवारी	जमीन	जनवरी फरवरी 1983	30
संतोष चौबे	बच्चे	जनवरी फरवरी 1983	40
सुकीर्ति गुप्ता	गाँव में एक त्यौहार	जनवरी फरवरी 1983	21
स्वामीनाथ पांडेय	स्वामीनाथ पाण्डेय और		
महेश उपाध्याय	महेश उपाध्याय की कविताएं	मार्च अप्रैल 1983	25
सुन्दर लोहिया और बनी सिंह	सुन्दर लोहिया और बनी सिंह की कविताएं	मार्च अप्रैल 1983	12
सुशील	शब्द	जनवरी फरवरी 1982	14
स्वप्निल श्रीवास्तव	तानाशाह के पांच	नवंबर दिसंबर 1982	10
सुदेश वाफ्ना	बुझा हुआ कोयला	नवंबर दिसंबर 1982	18
साहिर लुधियानवी	लहू नज़ दे रही है हयात	सितंबर अक्टूबर 1981	6
श्याम किशोर	सपने का रंग	नवंबर, दिसंबर 1981	32
शमशेर बहादुर सिंह	एक काले बच्चे का खेल	नवंबर दिसंबर 1980	18
शील	यह दाग है दोग आजादी	जनवरी फरवरी 1981	11
"	देशवासियों चौकस रहना	नवंबर दिसंबर 1982	7
शशि प्रकाश	बसंत	मार्च-अप्रैल 1982	9
शलभ श्री रामसिंह	नदी धरती का गीत	जुलाई अगस्त 1982	6
शुभा शर्मा	पांच कविताएं	जनवरी फरवरी 1983	17
हरीश भदानी	दबावों के खिलाफ	नवंबर दिसंबर 1980	22

हो ची मिन्ह	जेल डायरी	जनवरी फरवरी 1981	30
त्रिलाचन	तीन कवितारं	मई जून 1981	24
"	दो सानेट	नवंबर दिसंबर 1981	31
"	शान्ति यहाँ मिलती है	जनवरी फरवरी 1982	7

परिचर्चा विषय

परिचर्चा विषय	भाग लेने वाले	अंक	पृष्ठ सं०
1. वर्तमान भारतीय समाज साहित्यकारों से क्या चाहता है ?	शिव वर्मा रामविलास शर्मा शिवकुमार मिश्र मैनेजर पाण्डेय आनन्द प्रकाश मुरली मनोहर प्रसाद सिंह कर्ण सिंह चौहान	जुलाई अगस्त 1980	33-34 34-35 35-36 36-37 37-38 38-39 39-40
2. हमारे समाज के सांस्कृतिक विकास को कौन रोक रहा है ?	बी० टी० रणादिवे बी० वी० कारंत निखिल चक्रवर्ती भीष्म साहनी	सितंबर-अक्टूबर 1980	40-42 42-44 44-45 45-46
3. भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन क्यों आवश्यक है ?	रामशरणा वर्मा विपिन चंद्र इरफान हबीब सतीश चन्द	नवंबर-दिसंबर 1989	33-35 36-38 38-41 41-42

4. हिन्दी का समकालीन

कथा साहित्य कहाँ

पिछड़ रहा है ।	भैरव प्रसाद गुप्त	जनवरी-फरवरी 1981	42-43
	सुरेन्द्र चौधरी		44-45
	आनन्द प्रकाश		45-46
	मधुरेश		47-47
	रमेश कुंतल मेघ		47-48

5. भारत के कृषि संबंधों

को समझना क्यों

जरूरी है ।	इंद्रजीत सिन्हा	मई-जून 1981	49-51
	हरकिशन सिंह सुरजीत	मई-जून 1981	51-53
	पी०सी० जोशी		53-56

6. हिन्दी भाषी क्षेत्र में

जनवादी आन्दोलन

क्यों पिछड़ रहा है।	मेजर जयपाल सिंह	सितंबर अक्टूबर 1981	41-43
	सुशील भट्टाचार्य		43-45
	राजीव सक्सेना		45-46
	सव्यसाची		46-49

7. अन्तराष्ट्रीय मुद्राकोष

से पचास अरब रुपये

के कर्ज का मतलब है ।	अशोक मिश्र	जनवरी फरवरी 1982	33-36
----------------------	------------	------------------	-------

रणजीत सऊ	36-37
दीपक नैयर	37-38
पभात परनायक	38-39
अमित भादुड़ी	39-40
अमित कुमार बागची	40-42
असीम दास गुप्त	42-43

8. समकालीन भारतीय
समाज में वर्णों और
जातियों का वर्गों

से क्या संबंध है ।	रामशरण शर्मा	मई-जून 1982	44-50
	पी०सी० जोशी		50-53
	वी०टी० रणाविदे		53-55

9. दहेज विरोध संघर्ष
का जनवादी परिप्रेक्ष्य
क्या है ।

रीता करात	जनवरी-फरवरी 1983	45-47
अशोकलता जैन		47-49
इंदु अग्निहोत्री		49-50

10. सांप्रदायिकता की
समस्या का समाधान

आखिर क्या है ।	विष्णु प्रभाकर	जुलाई अगस्त सितंबर 1983	37-39
	पी०सी० जोशी		39-44
	ए० रहमान		44-45

बहस

बहस विषय	भाग लेने वाले	अंक	प्र०सं०
----------	---------------	-----	---------

1. सामाजिक सत्य और रचना का

माध्यम	मैनेजर पाण्डेय	जुलाई अगस्त । 1980	41-45
--------	----------------	-----------------------	-------

- | | | |
|---------------------------------------------------------------------------|------------------------------------------------|-------|
| 2. सामाजिक सत्य और रचना का माध्यम | शमशेर बहादुर सिंह सित० अक्टूबर 1980 | 51-54 |
| 3. साहित्य और राजनीति में अन्तः संबंध | ई०एम०एस० नंबूदरीपाद जनवरी-फरवरी 1981 | 33-34 |
| 4. साहित्य और राजनीति में अन्तः संबंध | ओम प्रकाश ग्रेवाल मार्च-अप्रैल 1981 | 47-50 |
| 5. साहित्य और राजनीति में अन्तः सम्बन्ध | नवल किशोर मई-जून 1981 | 57-58 |
| | वैजनाथ " 1981 | 58-60 |
| 6. साहित्य और राजनीति के अन्तः सम्बन्ध | कर्णसिंह चौहान जुलाई-अगस्त 1981 | 52-54 |
| 7. जन संस्कृति क्या है ? | ई०एम०एस० सितम्बर-सित० नंबूदिरिषाद अक्टूबर 1981 | 24-30 |
| 8. यथार्थवाद और समकालीन कथा साहित्य | शिवकुमार मिश्र जनवरी-फरवरी 1982 | 23-27 |
| 9. कहानी की यथार्थ परम्परा | जानकी प्रसाद शर्मा मार्च-अप्रैल 1982 | 47-51 |
| 10. यथार्थवाद का स्वरूप | भगवान सिंह जु० अगस्त 1982 | 43-48 |
| 11. आलोचनात्मक और समाजवादी यथार्थ का संबंध | अरूण मोहेश्वरी नवम्बर-दिसम्बर 1982 | 47-51 |
| 12. कथा साहित्य में यथार्थवाद के विभिन्न रूपों को कैसे अलग-अलग जा सकता है | ओम प्रकाश ग्रेवाल मार्च-अप्रैल 1983 | 29-34 |

13. यथार्थ के विकसित सन्दर्भ और

प्रेमचन्द के उपन्यास

चन्द्रभूषण

तिवारी

अक्टूबर-

नवम्बर 1983 51-60

समीक्षा
=====

विषय	समीक्षक	अंक	पृ0सं0
1. नमिता सिंह की कहानी संग्रह "खुले आकाश के नीचे"	रामकुमार शर्मा	जुलाई-अगस्त 1980	50-52
2. कुर्ती पर टिकी हुयी आलोचना जानकी प्रसाद शर्मा	शर्मा	सित0अक्टूबर 1980	55-58
3. समकालीन हिन्दी कविता जनवादी परिप्रेक्ष्य	आनन्दप्रकाश	मई-जून 1981	38-42
4. आज की जनवादी कविता की विरासत	ओमप्रकाश ग्रेवाल	जुलाई-अगस्त 1981	39-46
5. मार्कण्डेयः अग्निबीज	रमेश उपाध्याय	सितम्बर- अक्टूबर 1981	57-59
6. यांत्रिकता और उलझाव रहित यथार्थवादी नाटक	जवरीमल्ल पारख	जनवरी-फरवरी 1982	49-54

- | | | | |
|---------------------------------------------------------------------|------------------|--------------------------------|-------|
| 7. आज की जनवादी कविता
स्वर और संवेदना | नन्द भारद्वाज | मार्च-अप्रैल
1982 | 52-57 |
| 8. कहानी में नये विषयों और
रूपों की तलाश | कर्णसिंह चौहान | जुलाई अगस्त
1982 | 49-55 |
| 9. जनवादी कविता की तेज
होती धार | रामकुमार शर्मा | नवंबर दिसंबर
1982 | 57-63 |
| 10. मध्यमवर्गीय जीवन अर्थ
कहाँ पाता है | रमेश उपाध्याय | मई जून 1983 | 55-60 |
| 11. इसराइल का कथा साहित्य
जनवादी यथार्थवाद की
विशिष्ट उपलब्धि | ओमप्रकाश ग्रेवाल | जुलाई-
अगस्त
सितंबर 1983 | 49-56 |

जरूरी किताब

विषय	लेखक	अंक	पृष्ठसं०
1. मक्सिमन सोशियोलॉजी	चंचल चौहान	जुलाई अगस्त	
	परिचयात्मक टिप्पणी	1980	54-55
2. वामपंथी आवरण में साम्यवाद विरोध	रमेश उपाध्याय	सितंबर अक्टूबर 1980	50-61
3. जे०डी० वर्माविकृत साइंस इन हिस्टरी	रमेश उपाध्याय	नवंबरदिसंबर 1980	53-56

4. विज्ञान और नैतिकता	रमेश उपाध्याय	जनवरी-फरवरी	
		1981	61-62
5. साइंस एंड सोसायटी इन एंग्लिश इंडिया	श्याम बिहारी रायमार्च अप्रैल		
		1982	61-62
6. ए हिस्ट्री आफ दि आल इंडिया किसान सभा	रमेश उपाध्याय	मई-जून 1981	61-63
7. मध्यकालीन इतिहास वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में	वैज्ञानिक रामकुमार शर्मा	जुलाई-अगस्त	
		1981	61-63
8. अयोध्या सिंह की पुस्तक फासीवाद	बी०टी० रणदिवे	सितंबर	
		अक्टूबर 1981	60-64
9. कर्ज का शिकंजा	रमेश उपाध्याय	जनवरी	
		फरवरी 1982	55-56
10. जनवादी लेखक और आन्दोलन में मददगार चार पुस्तकें	रमेश उपाध्याय	मार्च-अप्रैल 1982	45-46
11. जाति और वर्ग की समस्या पर चार महत्वपूर्ण किताबें	रामकुमार शर्मा	मई-जून 1982	59-61
12. हमारी समस्या पर कुछ पठनीय पुस्तक	-	जनवरी-फरवरी	
		1983	58

संच

शीर्षक	अंक	पृष्ठसं०
1. दिल्ली का जन नाट्य संच	शकुंत शर्मा	जुलाई-अगस्त 1980 53-53
2. पटना में प्रेमचंद जन्म शती समारोह	कर्णसिंह चौहान	सितंबर-अक्टूबर 1980 62-63

3. कोटा क्षेत्र की जन संस्कृतिक गतिविधियां	रामभाई	नवंबर दिसंबर 1980 60
4. भागलपुर का जन संस्कृति मंच "दिशा"	चंद्रेश	नवम्बर दिसम्बर 1980 61
आगरा की नाट्यसंस्था रंग कर्म	सुरेंद्र सुकुमार	नवंबर-दिसंबर 1980 61
4. भागलपुर में प्रेमचन्द सप्ताह	रवि भूषण	जनवरी फरवरी 1981 63-64
5. साहिबाबाद में प्रगतिशील लेखक सम्मेलन	जानकी प्रसाद शर्मा	मार्च अप्रैल 1981 63-64
6. केदारनाथ अग्रवाल सम्मान समारोह	पीयूष श्रीवास्तव	सितंबर-अक्टू 1981 65-66
7. दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का क्षेत्रीय सम्मेलन	§प्रस्तुति रमेश उपाध्याय§	जनवरी फरवरी 1982 57-64
8. दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन	§प्रस्तुति-रमेश उपाध्याय§	मार्च अप्रैल 1982 58-64
9. जनवादी लेखक संघ द्वारा जारी प्रेस वक्तव्य		मई-जून 1982 62-63

10. शिमला और विदिशा में जनवादी
लेखक संघ के सम्मेलन रामकुमार शर्मा,
अरविंद कुमार जुलाई अगस्त
1982 56-58
11. दिल्ली में जनवादी लेखक संघ
का पहला राज्य सम्मेलन §प्रस्तुति रमेश
उपाध्याय§ सितंबर-
अक्टूबर 1982 56-58
12. बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा
और पश्चिमी बंगाल में जनवादी
लेखक संघ के राज्य सम्मेलन कर्णसिंह चौहान नवंबर-
दिसंबर
1982 64-66
13. जनवादी लेखक संघ के मध्य
प्रदेश राज्य सम्मेलन §प्रस्तुति रमेश
उपाध्याय§ जन0-फर0
1983 53-57
14. जनवादी लेखक संघ कलकत्ता
जिले का प्रथम सम्मेलन §प्रस्तुति रमेश
उपाध्याय§ मई-जून
1983 64-66
15. जनवादी लेखक संघों की रपट §प्रस्तुति रमेश
उपाध्याय§ मार्च अप्रैल
1983 61-65

16. जनवादी लेखक संघ का
जिला सम्मेलन §प्रस्तुति प्रेमदूबे§ जुलाई-अगस्त-
सितंबर 1983 65-66
17. जनवादी लेखक संघ का प्रथम
राजस्थान राज्य सम्मेलन §प्रस्तुति रमेश
उपाध्याय§ अक्टूबर-नवंबर-
दिसंबर 1983 64-66

कहानी की जमीन
=====

1. बंगाल के बटाईदार हिन्दी रूपान्तर
§चितव्रत पालित का लेख§ सुधा उपाध्याय जुलाई-अगस्त
1986 46-49
2. पंजाब का हरिजन सुधा उपाध्याय सितंबर-अक्टूबर
1980 47-50
3. उत्तर प्रदेश के दंगे सुनीता चोपड़ा नवम्बर-
दिसम्बर 1980 45-48
4. बिहार में बटाईदारी मुकुन जनवरी-फरवरी
1981 44-52
5. बिहार के गाँवों में चन्द्रोज असगर वजाहत मार्च-अप्रैल
1981 51-57
6. महाराष्ट्र के हम्माल सुधा उपाध्याय जुलाई-अगस्त
1981 47-51
7. वैज्ञानिक मानसिकता जानकी प्रसाद सितम्बर-
शामा §अनुवाद§ अक्टूबर 1981 51-56

3. मसूरी के बहाने भारत के पहाड़ी सैरगाहों पर एक नजर	मुकुल और यादवेंद	नव०-दिस० 1981	46-50
4. विज्ञान के पक्ष में	के० अशोक राव	जनवरी-फरवरी 1982	47-48
0. भगल पुर की पार्वती	मुकुल	मई-जून 1982	43-46
1. बस्तर के आदिवायियों की संघर्ष कथा	हरिहर वैष्णव	जुलाई-अगस्त 1982	28-30
2. आजाद भारत में कितनी आजादी	मुकुल	नव०-दिस० 1982	52-54
3. महाकाव्य और पुराणों में स्त्री और संपत्ति के सह संघर्ष	रमाशरण शर्मा	जन०-फर० 1983	41-44
4. हरियाणा का सांस्कृतिक परि- दृश्य	डी०आर चौधरी	मार्च-अप्रैल 1983	49-50
5. साल और सागवान	मुकुल	मई-जून 1983	49-53
6. पंजाब की हकीकत	मुकुल	अक्टूबर-नवंबर दिसंबर 1983	61-63

दोस्त कलम

1. वियतनामी कहानी और राजस्थानी कविता		जुलाई-अगस्त 1980	28
2. लेव तोलस्टॉय और भारतीय संस्कृति	सितंबर	सितंबर-अक्टूबर 1980	27-28
3. तीन चीनी बोध कथाएँ और अफ्रीकी कविता		नवंबर-दिसंबर 1980	29-31

4. एक बंगला कहानी और दस
वियतनामी कवितारं अनु०अक्षय उपाध्याय जनवरी-फर०। 98। 27-30
5. एक स्पेनिक और एक राजस्थानी
कविता अनुवाद राजश जोशी मार्च अप्रैल। 98। 27-28
6. चीनी कहानी मई-जून। 98। 33-37
7. पंजाबी नाटक §जंगी राम की हवेली
गुस्मरण सिंह § जुलाई अगस्त। 98। 25-32
8. पाकिस्तान की कवयित्री
फहमीदा
रियाज की कविता जनवरी-फरवरी
1982 32
9. दलित साहित्य की वैचारिक
पृष्ठभूमि सूर्यनारायण रण-
सुभे और कमलाकर गंगावणे मई-जून
1982 37-40
10. लक्ष्मण माने की आत्म कथा
का अंश पराये लक्ष्मण माने मई-जून। 982 40-42
11. बल्गारी भाषा के कवि इवान
वजोव की दो कवितारं इवान वजोव सित०-अक्टूबर। 982 14
12. सुभाष मुखोपाध्याय की
बंगाली कविता आता हूँ अनुवाद नागार्जुन नवंबर-दिसंबर
1982 13
13. वह वांछित कहाँ है काजी अब्दुल सत्तार मार्च अप्रैल
1983 27-28
14. कहाँ जाता हूँ §जैम्स मैथ्यूज अनुवाद
रतन चौहान जुलाई अगस्त
सित०। 983 36

15. आत्मजीत के पंजाबी नाटक

अधि-काने

अनुवाद अनूप सेठी

अक्टूबर-नवंबर

दिसंबर 1983

25-32

हमारी विरासत1. भारतीय सांस्कृति परम्परा और
समाजवादी भविष्य

हजारीप्रसाद द्विवेदी सितंबर-

अक्टूबर 1980

34

2. साम्प्रदायिकता और संस्कृति

प्रेमचंद

सितंबर-अक्टूबर

1980

39

3. लाल सलाम

गजानन्द माधव

मुक्ति बोध

नवंबर दिसंबर

1980

28

4. पूरन चंद जोशी

रामविलास शर्मा

जनवरी फरवरी

1981

35-37

5. कामरेड पी०सी० जोशी

राजीव सक्सेना

जनवरी फरवरी

1981

37-40

6. साहिर लुधियानवी की नज़्म
परछाइयाँ

अली सरदार जाफरी जनवरी फरवरी

1981

40-41

7. हमारी प्रगतिशीलता

राहुल सांस्कृतिक

मार्च अप्रैल 1981

33-37

8. किसानों का संगठन

महावीर प्रसाद

मई जून 1981

43-48

9. भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती
है

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जुलाई अगस्त 1981

35-38

10. लहू नज़ दे रही है हयात

साहिरलुधियानवी

सितंबर अक्टूबर

1981

6

11. मैं नास्तिक क्यों हूँ	शहीद भगत सिंह	नवंबर दिसंबर	
		1981	37-45
12. सज्जाद जहीर के नाम	सरदार जाफरी	जनवरी फरवरी	
		1982	29-30
13. बलराज साहनी का नाटक	बलराज साहनी	मार्च अप्रैल 1982	27-41
14. जोश मलीहाबादी और फिराक गोरखपुरी की कविताएं	जोश मलीहाबाद फिराक गोरखपुरी	मई जून 1982	4
15. मा निषाद.....	भगवत शरण उपाध्याय	सितंबर-अक्टूबर	
		1982	47-55
16. पूँजीवादी समाज और प्रेस	आचार्य नरेन्द्र देव	नवंबर दिसंबर	
		1982	44-46
17. स्त्रियों की शिक्षा	स्वामी विवेकानन्द	जनवरी फरवरी	
		1983	31-32

अन्यथा न लें

1. नारी हटाओ देश बचाओ	जयचंद उर्मिल	नवंबर दिसंबर	57-59
		1980	
2. नजर न लगे	जयचंद उर्मिल	जनवरी फरवरी	
		1981	58-60
3. यथार्थों की भीड़ और अकेला प्रेमचंद	जयचंद उर्मिल	मार्च अप्रैल 1981	58-60
4. हाय स्वदेशी : वाह स्वदेशी	बिन्दु भास्कर	जनवरी फरवरी	
		1982	44-56

- | | | | |
|---------------------------------------------------------------|---------------|-------------------|-------|
| 5. लेखको के नेता: नेता के लेखक | बिन्दु भास्कर | मार्च-अप्रैल 1982 | 43-44 |
| 6. पूँजीवादी "सुनसान" में क्रांति करने वाले भैया कटुकर के नाम | बिन्दु भास्कर | नवंबर-दिसंबर 1982 | 55-56 |

जो लिखा जा रहा है

- | | | | |
|---------------------------------------------------------|--------------------|---------------------|-------|
| 1. मूढ़ें आंखि कतहु कोउ नाहिं | रामकुमार शर्मा | नवंबर दिसंबर 1980 | 49-52 |
| 2. इधर और उधर | जवरी मल पारख | जनवरी फरवरी 1981 | 53-57 |
| 3. पूर्व ग्रह में 1980 और आज की कविता | जीवन सिंह | मार्च अप्रैल 1981 | 44-46 |
| 4. यथार्थ लेखन की समस्याएँ और आज का उपन्यास | जानकी प्रसाद शर्मा | जुलाई अगस्त 1981 | 55-59 |
| 5. जनवादी कहानी : दोहरी जिम्मेदारी | रामकुमार शर्मा | नवंबर दिसंबर 1981 | 51-55 |
| 6. राष्ट्रीय राजमार्ग: जनवादी कथा लेखन में एक नया बदलाव | ओमप्रकाश ग्रेवाल | सितंबर अक्टूबर 1982 | 43-46 |

परदे पर

- | | | | |
|----------------------------------------------------------|---------------|------------------|-------|
| 1. भास्कर कुलकर्णी का आक्रोश और अल्बर्ट पिंटों का गुस्ता | रमेश उपाध्याय | जुलाई अगस्त 1981 | 64-66 |
| 2. हीरक राजा के देश में प्रकृतवाद का चक्र | रमेश उपाध्याय | नव0-दिसम्बर 1981 | 64-67 |

3. सत्यचित राय की सद्गति	रमेशा उपाध्याय	मई-जून। 982	57-58
4. "उमरावजान" की कला और बाजार का यथार्थ	रमेशा उपाध्याय	जनवरी-फरवरी 1983	51-52
5. गाँधी : नीति और नियति	रमेशा उपाध्याय	मार्च-अप्रैल। 983	95

विशिष्ट रचना

1. चंद्रकांत देवताले की कविता "सवाल जवाब"	जुलाई अगस्त 1982	23-27
2. सवाल जवाब पर कविता और महावीर सिंह चौहान की प्रतिक्रियाएं	सितंबर-अक्टूबर 1982	21-23
3. जानकी प्रसाद शर्मा की गजलें	नवंबर दिसंबर 1982	25-26
4. घर में आग	जनवरी फरवरी 1983	33-34

विशेष

1. जनवादी लेखक संघ का प्रस्तावित	नवंबर दिसंबर 1981	33-36
----------------------------------	----------------------	-------

प्रतिक्रियाएं

- | | | |
|--------------------|-------------|---|
| 1. कर्ण सिंह चौहान | जनवरी फरवरी | |
| | 1981 | 3 |
| 2. चारुमित्र | जनवरी फरवरी | |
| | 1981 | 4 |

आवरण

- | | | |
|------------------------------------------------------------------------------------|------------------------------------------------------|---------------------|
| 1. पाली सज्जा | एस सिन्हा | जुलाई अगस्त |
| | | 1980 |
| 2. पाली | छाया प्रताप मेहता | |
| | देवदर | सितंबर अक्टूबर |
| | | 1980 |
| 3. पाली | | नवंबर दिसंबर |
| | | 1980 |
| 4. कथासरित्सागर की पांडुलिपि
स्त्री वाले नर्तकी और भागलपुर
में फोड़ी गयी आखि | संयोजक अवधेश
कुमार रमेश बत्तारा,
रमेश उपाध्याय | जनवरी फरवरी |
| | | 1981 |
| 5. पाली | | मार्च-अप्रैल 1981 |
| 6. पाली § 26 मार्च को दिल्ली में
किसान अजदूर रैली § | | मई-जून 1981 |
| 7. पाली | | जुलाई अगस्त 1981 |
| 8. पाली | | सितंबर अक्टूबर 1981 |
| 9. पाली | | नवंबर दिसंबर 1981 |
| 10. नवंबर 1981 में सबसे बड़ा कर्ज
और सबसे बड़ी रैली | | जनवरी फरवरी 1981 |

11. जनवादी लेखक संघ का प्रथम
राष्ट्रीय सम्मेलन मार्च-अप्रैल 1982
12. र. उ. छाया प्रतापमेहता मई-जून 1982
13. कुमार दीप शाल्म जुलाई-अगस्त 1982
14. पाली सितम्बर-अक्टूबर 1982
15. पाली नवंबर-दिसंबर 1982
16. पाली जनवरी-फरवरी 1983
17. पाली मार्च-अप्रैल 1983
18. छाया अनिल के दुग्गल रेखांकन
सजीव टंडन मई-जून 1983
19. पाली जुलाई-अगस्त-सितम्बर
1983
20. पाली अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर
1983

उपसंहार =====

"जनवादी हिन्दी साहित्य में 'कथन' पत्रिका का योगदान" नामक लघु शोध प्रबन्ध में जनवादी साहित्य में कथन पत्रिका के योगदान को रेखांकित करने के साथ, हिन्दी साहित्य में जनवाद की अवधारणा, हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव और विकास, लघु पत्रिका आन्दोलन का उद्भव और विकास के साथ लघु पत्रिकाओं की सूची, कथन सम्पादक रमेश उपाध्याय का व्यक्तित्व और कृतित्व तथा कथन में प्रकाशित विविध की रचनानुक्रमणिका दी गयी है।

"कथन" हिन्दी की ऐसी जनवादी पत्रिका है जिसने निरन्तर सार्थक सोद्देश्य तथा सुरुचिपूर्ण साहित्य दिया। सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति और उसमें आवश्यक परिवर्तन का उद्देश्य लेकर चलने वाली इस पत्रिका ने दो महत्वपूर्ण कार्य एक साथ किया-व्यापक पाठक समुदाय की सामाजिक चेतना के विकास के स्तर को ध्यान में रखते हुए उसे ऊपर उठाने, यथार्थवादी रचना और आलोचना के जरिये सामंती पूँजीवादी और साम्राज्यवादी मूल्यों तथा विचारों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए उन प्रगतिशील और जनवादी ताकतों को मजबूत करते हुए उन प्रगतिशील और जनवादी ताकतों को मजबूत बनाना, जिसके साथ साहित्य संस्कृति के विकास से सम्बन्धित प्रश्न जुड़े हुए थे।

आज सभ्यता और संस्कृति के स्तर पर भारत के गाँव पिछड़े हुए हैं और शहर काफी आगे हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि साहित्य में ग्रामीण जीवन का चित्रण पिछड़ेपन की निशानी और शहरी जीवन का चित्रण विकसित होने का परिणाम है। कथन में प्रकाशित कहानियों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत का सामाजिक यथार्थ गाँव और शहर दोनों को मिलाकर बनता है, दोनों जगह शोषक और शोषित वर्ग हैं और दोनों ही जगह बहुसंख्यक भारतीय जनता शोषित और उत्पीड़ित है। शहर और गाँव दोनों जगह के शोषक वर्ग तो संगठित हैं पर शोषित वर्गों

में एकता और संगठन नहीं है। हमारे शासक वर्ग किसानों और मजदूरों की एकता से बहुत घबराते हैं और उन्हें एक न होने देने के लिए तरह-तरह के भ्रम में डालने की कोशिश में लगे रहते हैं।

"कथन" के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जनवादी लेखन का उद्देश्य कोरी आत्मभिव्यक्ति नहीं बल्कि जनता को शिक्षित और आन्दोलित करना है। इसके लिए यह आवश्यक है कि लेखक को जन-शिक्षा और जनआन्दोलन का ज्ञान तथा अनुभव हो और यह ज्ञान तथा अनुभव वह अकेले नहीं प्राप्त कर सकता है अतः जनवादी लेखक की रचना प्रक्रिया का सामूहिक होना अनिवार्य है। जनवादी लेखकों का एक ऐसा संगठन होना चाहिए कि वह व्यक्तिगत स्तर पर लेखकों के रचनाक्रम में, सामाजिक स्तर पर उनके आर्थिक हितों की रक्षा और संवृद्धि में तथा राजनीतिक स्तर पर जनता के जनवादी अधिकारों और नागरिक स्वतन्त्रताओं की रक्षा करने में सहायक हो सके।

"कथन" पत्रिका में नारी को स्पष्ट रूप से शोषित माना गया है तथा उसकी मुक्ति के लिए सिद्धान्त और व्यवहार दोनों क्षेत्रों में प्रयास किया गया है। कानूनी तोर पर मर्द और औरत बराबर हैं पर व्यवहार में सर्वत्र उनमें असमानता है, इसको शिक्षा के प्रसार तथा अंधविश्वासों को समाप्त करके दूर किया जाना चाहिए।

"कथन" पत्रिका शोषक और शोषित वर्ग के वर्ग संघर्ष को अभिव्यक्त करने के साथ ही देश के समसामायिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक साहित्यिक विषयों तथा ज्वलंत समस्याओं से हमारा साक्षात्कार कराती है तथा इन समस्याओं का सामना करने के लिए जन सामान्य को एक जुट होकर संगठित स्वर में संघर्ष करने की प्रेरणा देती है। यह पत्रिका मार्क्स के वैज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित है तथा कर्म-शक्ति पर बल देती है। निरन्तर कार्य करते हुए व्यक्ति अपने मन्तव्य को प्राप्त कर सकता है। इसके लिए उसे किसी दैवीय शक्ति की आवश्यकता नहीं।

"कथन" पत्रिका को यदि रचनाकारों की दृष्टि से देखा जाय तो यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि "कथन" में बड़े से बड़े लेखक जैसे नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर, रामविलास शर्मा, भैरव प्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी, शोखर जोशी तथा नये से नये लेखक जैसे- सुरेशकांटक, बद्रीनारायण, सही राम, अशाफक, चन्द्रेश, मुकुल, चन्द्रेश्वर, की रचनाओं को शामिल किया गया है। सम्पादक की दृष्टि इस बात पर न होकर कि कौन लेखक किस संगठन, संस्था या विचारधारा से जुड़ा है, इस बात पर है कि जो रचना प्रकाशन के लिए आयी है वह कैसी है। यही कारण है कि पत्रिका लेखकों और पाठकों के बीच महत्वपूर्ण बन पड़ी है।

"कथन" जनसामान्य की भावनाओं, संकल्पों, सुख-दुख, जयपराजय और संघर्षों को अभिव्यक्ति देने वाली पत्रिका है तथा इसका मुख्य उद्देश्य जनता को शिक्षित करना उनके संघर्षों और जीवन को स्वर प्रदान कर उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा देना है।

इस प्रकार समग्रता में कहा जा सकता है कि "कथन" अपने आस-पास के सामान्य जन से सच्चा रिश्ता कायम करती है और जनसामान्य के बिखरे जीवन को अपने साहित्य का विषय बनाकर उसको सामान्य भाषा में अभिव्यक्त करती है। सामान्य जन से जुड़ाव के कारण यह पत्रिका जन जीवन के वास्तविक स्पर्दन को सहजरूप में रूपादित करने में काफी सफल रही है।

परिशिष्ट

1. स्वतंत्रोत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिभा- हेतु भारद्वाज पंचशील
प्रकाशन दिल्ली
2. स्वतंत्रता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता- डा० अर्जुन तिवारी
विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी
3. भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति उमाशंकर मेहरा
विनोद प्रकाशन आगरा
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा
वाराणसी
5. हिन्दी कहानी पहचान और परख इन्द्र नाथ मदान लिपि
प्रकाशन दिल्ली
6. हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया डा० परमानन्द श्रीवास्तव
ग्रन्थ प्रकाशन रामबाग
कानपुर
7. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना डा० उमा पाण्डेय हिन्दी
साहित्य संसार दिल्ली
8. प्रेमचन्द युगीन भारतीय समाज डा० इन्द्रमोहन कुमार सिंह
बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
पटना
9. हिन्दी पत्रकारिता के नये प्रतिमान बच्चन सिंह विश्वविद्यालय
प्रकाशन वाराणसी
10. हिन्दी कहानी स्वरूप और विकास प्रकाश दीक्षित विनोद
प्रकाशन आगरा

11. हिन्दी पत्रकारिता प्रेमचन्द और हंस
रत्नाकर पाण्डेय
प्रवीण प्रकाशन दिल्ली
12. भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता
ब्रह्मानन्द वाणी प्रकाशन
दिल्ली
13. कहानी नयी कहानी
नामवर सिंह
लोकभारत प्रकाशन दिल्ली
14. आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास
सव्यसाची भट्टाचार्य
राजकमल प्रकाशन दिल्ली
15. भारतीय सामंतवाद
रामशरण शर्मा
राजकमल प्रकाशन दिल्ली
16. आधुनिक हिन्दी काव्य
भागीरथ मिश्र
मध्यप्रदेश हिन्दी अकादमी
भगवती प्रसाद सिंह
श्री रामनगर दिल्ली
17. साहित्य और संस्कृति : कुछ अर्तयात्राएं
दामोदर घनविद
राजकमल प्रकाशन दिल्ली
18. प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता
पवनकुमार मिश्र
मध्यप्रदेश हिन्दी अकादमी
इरफान हबीब
राजकमल प्रकाशन दिल्ली
19. प्रयोगवादी काव्य
रामविलास शर्मा
राजकमल प्रकाशन दिल्ली
20. मध्यकालीन भारत
रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
21. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद
22. लोक जागरण और हिन्दी साहित्य

- | | |
|------------------------------------------------------------------|-----------------------------------------------------|
| 23. हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद | डा० कमलागुप्ता |
| 24. खूले आकाश के नीचे | नमिता सिंह |
| 25. नयी कहानी उपलब्धि और सीमाएं | गोरधन सिंह शोखावत |
| 26. मार्क्सवाद क्या है। | रनिल बर्न्स |
| 27. हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका | शम्भुनाथ सिंह |
| 28. कविता के नये प्रतिमान | नामवर सिंह |
| 29. हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास | डा० लक्ष्मी नारायण |
| 30. स्वतंत्रोत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम विवेकी राय
जीवन | |
| 31. हिन्दी काव्य में नारी | डा० बल्लभदास तिवारी |
| 32. आधुनिक हिन्दी काव्य समस्याएं
एवं समाधान | ललिता प्रसाद
सक्सेना |
| 33. हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास | जयकिशन प्रसाद खण्डेवाल |
| 34. आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियाँ | करुणापति त्रिपाठी |
| 35. हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा | प्रकाश चन्द्र |
| 36. जनता का नया साहित्य | शिवकुमार मिश्र
पीपुल्स लिटरेसी प्रकाशन
दिल्ली |
| 37. कला साहित्य और संस्कृति | लू-बून
पीपुल्स लिटरेसी प्रकाशन
दिल्ली |
| 38. साहित्य और साहित्य दृष्टि | मैनेजर पाण्डेय
वाणी प्रकाशन नई दिल्ली |
| 39. मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी
कथा साहित्य | कुंवर पाल सिंह
धरती प्रकाशन दिल्ली |

40. जनवादी समझ और साहित्य
रामनारायण शुक्ल
विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी
41. कार्लमार्क्स कला और साहित्य चिन्तन
नामवर सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली
42. मार्क्सवाद और साहित्य
शिवकुमार मिश्र
प्रकाशन संस्थान दिल्ली
43. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य
रामविलास शर्मा
मंगल प्रकाशन दिल्ली
44. मार्क्सवाद और हिन्दी कविता
भक्त राम शर्मा
वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
45. सादोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी
चेतना
नरेन्द्र सिंह
वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
46. जनवादी कविता का सन्दर्भ
शिवशंकर मिश्र
कुमार प्रकाशन नई दिल्ली
47. हिन्दी पत्रकारिता
कृष्ण बिहारी मिश्र
ज्ञानपीठ दिल्ली
48. हिन्दी कहानी : अपनी जवानी
डा० इन्द्र नाथ मदान
49. हिन्दी कहानी के अस्सी वर्ष
शिवदान सिंह चौहान
50. हिन्दी कहानी अतरंग परिचय
डा० राधेयाम गुप्त
51. हिन्दी कहानी : एक अन्तयात्रा
डा० वेदप्रकाश अभिताभ
52. हिन्दी पत्रकारिता के युग निर्माता
लक्ष्मी शंकर व्यास
व्यास प्रकाशन वाराणसी
53. नयी कहानी उपलब्धि और सीमारं
डा० गोरधन सिंह शोखावत
रामापब्लिशिंग हाउस
जयपुर

54. हिन्दी साहित्य का इतिहास
डा० नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नयी दिल्ली
55. जनवादी समीक्षा नया चिंतन : नये प्रयोग
चंचल चौहान
पाण्डुलिपि प्रकाशन दिल्ली
56. प्रगतिवादी आन्दोलन का आलेखात्मक
इतिहास
कर्णसिंह चौहान
नेहा प्रकाशन दिल्ली
57. समकालीन सृजन सयुक्तांक 9-12 जनवरी-दिसम्बर 90
गणेश शंकर विद्यार्थी और हिन्दी पत्रकारिता सं०-शंभुनाथ
20 बालमुकुद कलकत्ता
स० तव्यसाची
मथुरा
58. उत्तरार्द्ध जनवादी विशेषांक
सं. विजेन्द्र नवम्बर 1988
राजामण्डी आगरा
59. ओर
रमेश उपाध्याय,
राजकुमार शर्मा
राणाप्रतापबाग
दिल्ली
60. कथन पूरे 20 अंक सं०